जंगल में मंगल

शैलेश मटियानी

शब्दपीठ
आनन्द भवन के सामने, इलाहाबाद-२

मूल्य : दस रुपये । प्रथम संस्करण : अक्तूबर १९७५ ईसवी

प्रकाशक : शब्दपीठ, आनन्द भवन के सामने, इलाहाबाद-२

मुद्रक : प्रगति प्रेस, इलाहाबाद-३

जंगल में मंगल : शैलेश मटियानी की कहानियों का संग्रह

'जंगल में मंगल' शैलेश मटियानी की कहानियों का नवीनतम संग्रह, उनके पिछले कहानी संग्रहों से किंचित भिन्न प्रकृति का है। इसकी प्रायः सभी कहानियाँ व्यंग्य का स्पर्श लिये हुए हैं और भारतीय समाज के—राजनैतिक, सामाजिक और आर्थिक—अंतर्विरोधों को इनकी आंतरिक जटिलताओं के साथ प्रतिबिम्बित करती हैं।

अपनी भाषा और शिल्पगत विशिष्टताओं के लिए शैलेश मटियानी की कहानियाँ पाठकों के बीच लगातार चर्चा का विषय बनी रही हैं और उनकी स्मृति का हिस्सा भी।

'जंगल में मंगल' की कहानियाँ भी पाठकों को रुचिकर लगेंगी, यह अपेक्षा करना स्वाभाविक ही होगा।

कहानियाँ

●

भेड़ें और गड़ेरिये : ११
नेताजी की चुटिया : २७
संतति-निरोध : ४८
मोहल्ले में लगी आग : ६१
शहंशाह अकबर का फार्मूला : ७८
दूब कितनी मुलायम होती है : ९८
जंगल में मंगल : ११६

भेड़ें और गड़ेरिये

चंदा, चंदा, चंदा !
चंदा, चंदा, चंदा !
चंदा, चंदा, चंदा !

भिश्तियों के कंधों पर से लटकती हुई मशकें जनता ने देख रखी थीं, मगर नेताओं के कंधों से लगकर लटके हुए खद्दर के बड़े थैले उसे पहली-पहली बार दिखायी दे रहे थे।

यह देखकर तो जनता और भी कौतूहलपूर्ण आनन्द में डूब गयी कि दोनों नेताओं के पीछे दो-दो तरुणी महिलाएँ भी हैं, जो पहली

दृष्टि में तो विधवाओं-जैसी लगती हैं, मगर जल्दी ही उनके नाजुक कंधों पर लटके हुए खद्दर के थैलों पर नजर पड़ जाती है—चंदा दो, अब खोलो हाथ—भारतमाता हो आजाद !

चिट्ट सफेद धोतियाँ 'और उनकी बायें से पीछे कमर और आगे नाभिमण्डल तक करीने से बिठायी हुई काली किनारियाँ। कपाल के बीचो-बीच सिंदूर के चन्द्राकार टीके और गरदन की बायीं तरफ से सँपेरे की पिटारी से बाहर निकल आयी काली नागिनों-जैसी खुली लटें—जनता गद्गद् होकर सीटी बजाने को हो आती है—स्सि-ट्टी-ट्टी स्सी·······

माथे पर चन्द्राकार सिंदूर-टीका और पिटारी में से पूँछ की तरफ से बाहर को निकल आयी काली नागिनों-जैसे लटों के खुले हुए बाल, जो सफेद खद्दर पर रेशम के काले गुच्छों-जैसे दिखायी देते हैं। नागपंचमी के दिन दूध के कटोरों के पास जीभें लपलपाती काली नागिनों जैसे।

जनता पैरों पर उचक-उचककर खड़ी होने लगती है—अहा, विधवा और सुहागिनों की यह संयुक्त वेश-भूषा ! ये पिटारी के किनारे पर टिके हुए नागफणियों-जैसे चेहरे और झुकी हुई आँखें···मैदान में जनता की भीड़ बढ़ती चली जा रही है।

"ओ, हमारे देश की प्यारी जनता !"

भद्र महिलाओं के सम्मोहन में बँधी हुई जनता एकाएक चौंक उठती है। देखती है कि नेता तपोवर्द्धन कंधे पर लटके हुए थैले को उसकी ओर फैलाते हुए, उसे अपार विनय और करुणा के साथ सम्बोधित कर रहे हैं—"ओ, मेरे देश की प्यारी जनता ! आज तक का—पिछले सैकड़ों वर्षों का इतिहास गवाह है कि हमारी भारतमाता गुलामी की बेड़ियों से जकड़ी हुई है ···।" और फिर एकाएक नेता जी शेर की तरह गरज उठते हैं—"ओ, मेरे प्यारे देश के वीरो ! अब फिर जौहर का समय

नजदीक आ गया है। अब आप लोग खोल दें अपनी फौलादी मुठ्ठियाँ और काट दें भारतमाता की जंजीरें !"

'भारत माता की जंजीरें', कहते-कहते नेता तपोवर्द्धन पीछे मुड़ कर देखते हैं, तो पीछे खड़ी तरुणियों की आँखों से बहते हुए आँसू जनता को भी साफ-साफ दिखायी दे जाते हैं। जनता भावाभिभूत हो उठती है— तो क्या नेताओं ने ये थैले बेड़ियाँ काटने के औजार इकट्ठा करने के लिए कंधों पर लटका रखे हैं।

जनता के मस्तिष्क में यह प्रश्न कौंध ही रहा होता है कि नेता तपोवर्द्धन फिर भयंकर स्वर में गरज उठते हैं—"ओ, मेरे देश के प्यारे लोगो ! आज हमें भारतमाता की जंजीरें काटने वाले औजारों की जरूरत है। खोल दो फौलादी मुट्ठियाँ और उनमें बंद चाँदी और सोना भारत माता को समर्पित कर दो !"

औजार नहीं, फौलादी मुट्ठियों से चाँदी और सोना !

जनता एकाएक नेता तपोवर्द्धन जी की प्रतीकात्मक भाषा को समझ नहीं पाती है, मगर तब तक दूसरे नेता दुलारे लाल पीछे खड़ी तरुणियों को आगे कर देते हैं और जनता को अपने सामने थैलों के खुले हुए मुँह दिखायी पड़ते हैं—चन्दा—भारत-माता की आजादी के नाम पर ! चन्दा—जवाहर लाल नेहरू के नाम पर ! चन्दा—नेता तपोवर्द्धन और नेता दुलारे लाल के नाम पर !

जनता को उस दिन की याद आती चली जाती है, जब इन दोनों नेताओं को अपने दायें-बायें खड़ा करके महात्मा जी ने कहा था—"ओ, मेरे देश की प्यारी जनता ! जैसे दो बैलों की जोड़ी धरती को जोतती है और धरती शस्य-श्यामला हो जाती है—अन्नपूर्णा हो जाती है—ठीक वैसे ही, ये दोनों बलिदानी नेता आपके इस पहाड़ी प्रदेश में आप लोगों

के लिए खुशहाली और आजादी लायेंगे। आप सब इन प्यारे देश-भक्तों का साथ दें और गुलामी की जंजीरें काट फेंकें।''

थैले आगे बढ़ते चले आते हैं और जनता की फौलादी मुट्ठियों में बन्द चाँदी और सोना उनमें भरता ही चला जाता है—रह-रह कर जनता की आँखों में सिर्फ एक प्रश्न उभरता दिखायी देता है, क्या ऐसा सम्भव हो सकेगा ? चंदे के औजारों से गुलामी की बेड़ियाँ काटी जा सकेंगी ? और सम्भव हो गया, तो क्या होगा ?

''तब अपने देश में अपना राज होगा !'' नेता तपोवर्द्धन तरुणियों के कंधों पर से भरे हुए थैले उतरवाकर, उन्हें मंच की चादर पर खाली करवाते हुए फिर गरजते हैं—''तब, ओ मेरे देश की प्यारी जनता ! सात-समुन्दर पार के बन्दरों का समूह हमारी खुशहाली के बगीचे को नहीं उजाड़ पाएगा ! तब, ओ मेरे देश के प्यारे लोगो ! तब आप लोगों को ये टैक्स नहीं देने पड़ेंगे, जिन्हें देते-देते आप लोगों की कमरें टूट गयी हैं !''

जनता की फौलादी मुट्ठियों में से अपने-अपने घर की औरतों के सोने-चाँदी के जेवर बड़े-बड़े चंदे के थैलों में और तेजी से गिरते चले जाते हैं। नेता तपोवर्द्धन और दुलारे लाल तरुणियों की झुकती हुई कमरों के पास हाथ का सहारा देते हुए, फिर थैलों में भरा चाँदी-सोना मंच पर बिछी हुई चद्दर पर खाली कर लेते हैं।

फिर जनता भारतमाता, महात्मागाँधी, जवाहर लाल नेहरू और नेता तपोवर्द्धन तथा दुलारे लाल का जय-जयकार करते हुए वापस लौट जाती है। मंच पर बिछी हुई चादर को एक तरफ से नेता तपोवर्द्धन जी के देश-भक्त पुत्र उठाते हैं और दूसरी तरफ से नेता दुलारे लाल के भतीजे—**बोलो, जनता जनार्दन की—ई-ई ज्जै !**

समय बीतता जाता है।

नेता तपोवर्द्धन और दुलारे लाल बार-बार मंच पर खड़े होते है और जनता मंच के सामने के विशाल मैदान में। खाली थैलों और स्वयं सेविकाओं की संख्या बढ़ती चली जाती है। जनता थैलों पर लिखे हुए वाक्यों को बार-बार पढ़ती है—

चंदा दो, अब खोलो हाथ,
भारतमाता, हो आजाद !

जनता तरुणियों के करुण कंठ स्वर और आँसुओं से द्रवीभूत हो उठती है। गुलामी के बोध से सारा जन समुदाय सनसना उठता है—भारतमाता—हो आजाद !

और फौलादी मुट्ठियों में बन्द चाँदी-सोना बाहर निकलता चला आता है। गरीबी और गुलामी से स्याह पड़ी हुई हथेलियों में, माँ बहन और पत्नियों के आड़े वक्त पर गिरवी रखकर गुजर करने को बचा रखे गए जेवर आते चले जाते है और चंदे के थैलों में गिरते चले जाते हैं—**भारतमाता की ई-ई ज्जै !**

नेता तपोवर्द्धन जी और दुलारेलाल जी थैले मंच पर बिछी हुई चद्दर पर खाली करवाते हैं और एक तरफ से चादर हमेशा तपोवर्द्धन जी के बेटे उठाते हैं और दूसरी तरफ से नेता दुलारे लाल जी के भतीजे। जगह-जगह सूरजदीन जमादार ढोलकी बजाता घूमता है—'आज शाम के ठीक तीन बजे से, शहर के परशिद्ध किरांतिकारी मैदान दुर्गादेवी जी के मन्दिर के सामने—मुल्क के बलिदानी नेता तपोवर्द्धन—'

नेता तपोवर्द्धन और दुलारेलाल मंच पर भाषण देते चले जाते हैं। जनता भेड़ों की तरह दौड़ती हुई मैदान में आती है और उसकी फौलादी मुट्ठियाँ चाँदी-सोना उगलती हैं और अंग्रेजी फौजें जनता को गोलियों-

लाठियों से मारती-पीटती रहती है। जनता मरती मिटती है, मगर पीछे नहीं हटती है—भारतमाता-आ-आ-आ-हो आजाद !

समय फिर बीतता जाता है।

जनता सिर्फ एक बार नेताओं से यह प्रश्न जरूर पूछती है—"महाराज, जैसे हम लोग आप लोगों के पीछे-पीछे चल पड़ते हैं, इससे तो यही लगता है, हम भेड़ें हैं और आप गड़ेरिये हैं—क्या यह सच है ?"

असल में जनता व्यंग कर रही होती है, क्योंकि रोज जनता में से बहुत-से लोग मारे जाते हैं, मगर नेता ज्यों-के-त्यों फिर मंच पर खड़े दिखाई देते हैं। उनमें से कोई कम नहीं होता है।

मगर नेता लोग इस बात से नाराज नहीं होते हैं। नेता फिर मंच पर खड़े होते हैं—"ओ, हमारे देश के प्यारे लोगो ! यह सच है कि हम गड़रिये हैं और आप भेड़े हैं !"

जनता एकदम चौंक पड़ती है। अपमान से वह उत्तेजित होने को होती है कि उसे विधवाओं की सी वेशभूषा में खड़ी तरुणियाँ मंद-मंद मुस्कुराती हुई दिखाई देती हैं। जनता बौखला उठती है—"हम भेड़ें हैं और आप लोग गड़ेरिये हैं ?"

"यह ध्रुव सत्य है ! 'सत्यमेव जयते' है ! 'अहिंसा परमोधर्मः' है ! 'तमसोमा ज्योतिगमय' है ! 'मृत्योर्मा अमृतंगमय' है !"—नेता शांत भाव से उत्तर देते हैं—"ओ, हमारे देश के प्यारे लोगो ! जैसे गड़ेरियों का फर्ज होता है कि भेड़ों को हरे-हरे चरागाहों की ओर ले जाएँ। वन्य-जंतुओं से उनके जान-माल की रक्षा करें। ठीक ऐसे ही हम नेताओं का भी यह परम कर्त्तव्य होता है कि हम जनता को उसके खुशहाल भविष्य की ओर ले जाएँ—गुलामी के अंधकार से आजादी की रोशनी की तरफ ले जाएँ। अंग्रेजों के हाथों हमेशा मरते रहने के संकट

से आजादी की अमर जिंदगी की ओर ले जाएँ और जनता का राज कायम करके, खुद उसकी सेवा में बाकी उम्र बिता दें !"

"नेता तपोवर्द्धन की-ई-ई-ज्जै, ज्जै, ज्जै !"

"नेता दुलारे लाल की—ई-ई-ज्जै, ज्जै, ज्जै !"

जनता अपने महान नेताओं के प्रति श्रद्धा से गद्‌गद् हो उठती है। भरपूर कण्ठों से आकाश तक गूँजनेवाला जय-घोष करती है। जनता आती है और अपना खतरे में पड़ा हुआ भविष्य—अपना जान-माल—अपने महान् नेताओं को समर्पित कर, प्रसन्न होती है।

०

समय फिर बीतता चला जाता है।

चंदे के थैले खाली होते और भरते चले जाते हैं।

और एक दिन जनता खुशी के मारे चिल्ला पड़ती है—जब उसके महान् नेताओं के कंधों पर 'चंदे के थैले' नहीं दिखाई देते बल्कि 'तिरंगे झंडे' दिखाई देते हैं।

लाल किले की दीवार पर से 'यूनियन जैक' उतरा हुआ दिखाई देता है—स्वतन्त्र भारत······

जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद ! जिन्दाबाद !

खुशी की मारी जनता बाढ़चढ़ी यमुना नदी की तरह बहती चली जाती है। उसके सारे दु:ख-शोक और संशय आजादी की खुशी की बाढ़ में बह जाते हैं। वर्षों तक जनता की खुशी की बाढ़ उतरती ही नहीं है। वर्षों तक जनता अपने महान् नेताओं का जय-जयकार करते हुए थकती ही नहीं है।

मगर धीरे-धीरे फिर एक वर्ष ऐसा भी आता है, जब यह बाढ़ उतरती है और तब जनता फिर महसूस करती है कि आजादी की इस

बाढ़ में भी उसके ही 'जान-माल' की सारी पूँजी नेताओं के कब्जे में चली जा रही है !

उसकी गरीबी से स्याह पड़े हुए फौलादी हाथ पहले से ज्यादा स्याह पड़ चुके हैं और उन पर लगातार ऐसे-ऐसे टैक्सों के बिल जमा होते जा रहे हैं, जिनकी अंग्रेजों के जमाने में कभी उसने कल्पना भी नहीं की थी।

और महान् नेता तपोर्द्धन और दुलारे लाल जी की हथेलियाँ रक्त-कमल की तरह गदराती चली जा रही हैं। नेता तपोवर्द्धन जी के बेटों और दुलारेलाल जी के भतीजों के हाथों में अब मंच को चादरों के कोने नहीं, बड़े-बड़े ठेकों के सरकारी 'परमिट' दबे हुए हैं।

जनता की माँ की कमर झुक चुकी है। पत्नी बेहद कमजोर पड़ चुकी है और बहन की कुँवारी आँखों की चमक बुझ चुकी है। जनता की सधवाओं की दशा विधवाओं से भी बदतर होती जा रही है, मगर नेताओं के साथ विधवाओं के से भेष में रहने वाली स्वयंसेविका तरुणियों का हाल यह है कि कार में बैठे-बैठे भी उन्हें पसीना हो आता है और हस्तकला-केन्द्रों में विशेष रूप से तैयार किये गये 'वैनिटी बैग' में से अमेरिकन पाउडर गालों पर लगाते हुये उनका खून सनसनाता दिखाई देता है !

जनता देखती है कि महात्मा जी ने उनके जिन दो नेताओं के कंधों पर अपने हाथ रखे थे · अब उन महान् देशभक्त नेताओं के हाथ मेनकाओं-जैसी महिलाओं के कंधों पर पड़े रहते हैं।······और नेताओं की कारें धूल उड़ाती चली जाती हैं। जनता पुकारती रह जाती है—"ओ, हमारे हमारे महान् नेताओ ! ओ, हमारे जनभक्त नेताओ !"

धीरे-धीरे जनता निराश होने लगती है कि तभी नेताओं की कारें फिर उसकी ओर लौट आती हैं। फिर नेता मंच पर खड़े होते हैं और फिर जनता मैदानों में भीड़ लगती है।

जनता देखती है, समझने में गलती जनता से खुद ही हुई है। वह नेताओं को घमण्डी समझती थी, मगर इतने महान् नेता और उसे झुक-झुककर प्रणाम कर रहे हैं !

हर पाँच साल में—कभी-कभी बीच-बीच में भी—नेता हाथ जोड़ते हुए जनता को प्रणाम करते हैं—"ओ, हमारे देश की महान् जनता, हम तेरे सेवक हैं ! ओ, हमारे देश के प्यारे लोगो ! अपने हम सेवकों को 'वोट' देकर, हमें अपनी सेवा का मौका दो, ताकि हमारी आजादी हासिल करने के बाद बाकी बची हुई उम्र भी आप लोगों के ही लिए कुर्बान हो सके !"

वोट—महात्मा गाँधी के नाम पर नेता तपोर्द्धन जी को !

वोट, पण्डित जवाहर लाल जी के नाम पर नेता दुलारे लाल जी को !

महात्मा गाँधी और जवाहर लाल जी के प्रति अपनी आंतरिक श्रद्धा से अभिभूत जनता फिर-फिर नेता तपोवर्द्धन और दुलारे लाल जी को 'वोट' देती है। फिर-फिर दोनों महान् नेता जनता की सेवा में उम्र गँवाते हैं।

नेता तपोवर्द्धन 'सर्वोदय कुटीर' में रहने लगे हैं, जो सिर्फ पाँच मंजिलों की शानदार कोठी है, बाकी की सतमंजिला इमारतें, जो आजादी के बाद उन्होंने बनवाई थीं, जनसेवा के लिए किराये पर उठा दी गई हैं !

जनता 'सर्वोदय-कुटीर' के फाटक के पास से गुजरती है, तो दरबान जोर से चलने के लिए डाँटता है कि महान् नेता तपोवर्द्धनजी पाँचवीं मंजिल पर सोये हुए हैं !

डरी हुई जनता कल्पना करती है, तो उसे तपोवर्द्धन जी की बगल

में पिटारी में से बाहर निकलती हुई काली नागिन-जैसी कोई चीज लेटी हुई दिखाई देती है ! और जनता, सहम कर, आगे बढ़ जाती है ।···

नेता दुलारे लाल जी (गुलामी की जंजीर तोड़ने के लिए जिन्होंने ब्रह्मचर्य व्रत धारण किया था ।) अभी भी कुँवारे ही हैं, ताकि जनता की सेवा कर सकें । सिर्फ कुछ औरतें उन्होंने जन-सेवा के लिए ही साथ रखी हुई हैं, जो सिर्फ इस लिए कीमती पोशाक पहनती हैं कि जनता की माँ-बहनों को भी इस बात का अहसास हो सके कि आजादी के बाद उनके लिए कैसा सुनहला भविष्य आ गया है। जो सिर्फ इसलिए नेता दुलारे लाल जी के कंधों पर सिर टिकाए-टिकाए कारों में सैर-सपाटे को निकलती हैं कि आस-पास खेतों-खलिहानों और घरों में काम करती हुई जनता की पत्नियाँ भी ऐसा ही कर सकें और जनता आजादी का राजसी सुख भोगे ।

नेता दुलारे लाल थकी हुई महिलाओं का पसीना पोछते हैं, तो उनके गालों पर अमेरिकन लिपिस्टिक-जैसा खून सनसना आता है । जनता की माँ, पत्नी और बहनें अपने चेहरों को स्याह हाथों से टटोलती हैं, तो आँखों के खारे पानी से हाथों का मैल उमसने लगता है ।

कमजोर और बेवकूफ जनता धीरज और आस्था खोने लगती है ।

पांचवें वर्ष फिर नेता तपोवर्द्धन आते हैं । हाथ जोड़ते हुए, सिर झुकाते हैं, मगर जनता चिल्ला उठती है—"अब हम तुम्हें वोट नहीं देंगे । पहले बताओ कि क्या कारण है, जो आजादी के बाद आप तो कारों में घूमते हैं, सतमञ्जिली हवेलियाँ खड़ी कर ली हैं, बड़े-बड़े ठेके ले लिए हैं और हम निरंतर बेघर और बेरोजगार होते जा रहे हैं ? क्या कारण है ? कहाँ चली गयी वह आजादी, जो हमारे लिए आने वाली थी ?"

जनता समझती थी, आज नेता जी नाराज हो जाएँगे मगर नेता तपोवर्द्धन जी जनता के दुख-दर्द को समझते थे। वह शान्त भाव से ही बोले—"ओ मेरे देश के प्यारे लोगो ! एक सवाल मैं भी पूछता हूँ। क्या आप लोगों में से किसी ने आजादी से पहले किसी अंग्रेज अफसर से भी पूछा था कि उसके पास बँगले क्यों हैं ? कारें क्यों हैं ? नहीं ! तब दर-असल आप लोगों को उनसे कुछ भी पूछने का कोई हक था ही नहीं !"

नेता तपोवर्द्धन जी ने जोर से 'माइक' पर मुक्का मार दिया, तो जनता सहम उठी। मगर तभी जनता ने देखा, दूसरे ही क्षण नेता तपो-वर्द्धन और भी ज्यादा झुककर प्रणाम करते हुए, मुस्करा रहे हैं—"ओ मेरे देश के प्यारे लोगो ! मगर मुझसे—और मुझ-जैसे हरेक अपने जन-सेवक से—यह सब-कुछ पूछने का पूरा-पूरा हक आप लोगों को है। क्योंकि स्वतंत्र भारतवर्ष के असली राजा आप हैं। आखिर इसी वैचारिक स्वतंत्रता के लिए तो हमने कुर्बानियाँ दी हैं, ताकि जनता अपने हम-जैसे सेवकों से जो-कुछ पूछना चाहे, पूछ सके ! बोलो, आजाद हिन्दुस्तान की-ई-ई—"

'ज्जै-ज्जै-ज्जै !' जनता खुशी से झूम उठी। जनता को अपने अप-राध के प्रति ग्लानि भी हुई कि उसने अपने महान् नेता पर आक्षेप किया। जनता श्रद्धा से जयकार करने लगी—'हमारे महान् नेता तपोवर्द्धन जी की ई-ई-ई...'

'ज्जै, ज्जै, ज्जै !'

मगर एक दिन जनता ने उसकी आँखों में धूल झोंकती जाती नेता दुलारे लाल जी की कार को भी रोक लिया और उनके देश की शासन-व्यवस्था को ढोने के लिए चौड़े ऊँचे बनाए हुए कंधों पर लुढ़की हुई सुन्दरियों की ओर संकेत किया—"नेता जी, यह आप का कौन-सा रूप

है ? आप तो आजादी से पहले ब्रह्मचारी थे, मगर तब भी महिलाएँ साथ रहती थीं ? और अब भी कुँवारे हैं, मगर सुन्दरियों को कंधों पर लिये फिरते हैं ? आप तो कहते थे कि हमारी गुलामी से मुरझायी हुई माँ-बहनों और पत्नियों के चेहरों पर स्वतन्त्रता की लाली उभर आएगी—मगर उनकी आँखें और ज्यादा गड्ढों में धँस गयी हैं ! ·····और······ और आपके कंधों पर गुलबकावली के जैसे फूल······"

जनता सोचती थी, अब नेता दुलारे लाल अत्यन्त क्रोधित हो उठेंगे और फटकारेंगे। मगर नेता दुलारे लाल अपनी प्यारी जनता के दुःख-दर्द को समझते थे। वे कार से बाहर निकले, सीधे मैदान की ओर बढ़ गए। जनता भी पीछे-पीछे बढ़ती गयी। दुलारे लाल जी मंच पर खड़े होकर, दोनों हाथ जोड़ते हुए, प्रेमपूर्वक बोले —"ओ, मेरे देश के प्यारे-प्यारे लोगो ! जिस अधिकार के साथ आज आप लोगों ने मुझसे चन्द जरूरी सवाल पूछे हैं, उससे मेरा सीना खुशी से शांति के कबूतर की तरह पंख फड़फड़ा रहा है ! मगर ओ मेरे देश के जनतंत्र के अधिनायको ! यह आप लोगों का जन-सेवक आपसे सिर्फ एक सवाल पूछना चाहता है। क्या आजादी से पहले हमारी भारतमाताओं को ऐसी स्वतन्त्रता हासिल थी ? इन्हीं बहनों को आपने आजादी से पहले भी देखा था। बेचारियाँ कैसी दीन, दुखी और दरिद्र दिखाई देती थीं ? और अब आजादी के बाद भी इन्हें देख रहे हैं आप लोग ? आजादी की लाली और खुशहाली ने इनको वास्तव में भारतीय वीरांगनायें बना दिया है, या नहीं ? इनमें यह महान परिवर्त्तन आखिर आजादी के बाद ही तो आया है ? बोलो, मेरे देश के अधिनायको ! बोलो, आजाद भारत माता की ई-ई-ई !"

'ज्जै, ज्जै, ज्जै !' जनता आत्मगौरव से झूम उठी—'हमारे महान् नेता दुलारेलाल जी की ई-ई-ई-ज्जै, ज्जै, ज्जै !'

और समय फिर बीतता गया।

नेताओं के दिल्ली वापस लौटते ही, जनता फिर दुखी रहने लगती थी और संशयग्रस्त हो उठती थी। तभी एक दिन नेता पाँच वर्षों से पहले ही लौट आए अपनी प्यारी जनता के बीच—'ओ हमारे देश के प्यारे वीरो!'

जनता ने आश्चर्य से देखा कि इस बार नेताओं के चेहरे उदास हैं और उनके पीछे खड़ी महिलाओं की आँखों में आँसू उमड़े हुए हैं और कंधों पर फिर चंदे के लिये खद्दर के बड़े-बड़े थैले लटके हुए हैं।

चंदा, आजाद भारतमाता के नाम पर!

चंदा, नीच आक्रमणकारी शत्रु को मुँह तोड़ जवाब देने के नाम पर!

चंदा, अपनी प्यारी जनता के जानमाल की रक्षा के नाम पर!

चंदा, महात्मा गाँधी के नाम पर!

चंदा, नेता तपोवर्द्धन······

'नहीं, नहीं, नहीं!'—इस बार जनता क्रोध से चीख उठी—'आखिर स्वतंत्र भारत में भी आप लोगों के कंधों पर चंदे के थैले क्यों लटके हुए हैं?'

नेता तपोवर्द्धन ने हाथ जोड़ते हुए उत्तर दिया—'ओ, मेरे देश की प्यारी जनता! आप लोगों को याद होगा कि हमने इस देश की आजादी चंदे से ही हासिल की थी? अब हम इस देश की दुश्मनों की फौजों से रक्षा भी चंदे से ही करेंगे! इतनी समझ आप लोगों में भी होनी चाहिए कि जिस देश ने अपनी आजादी चंदे से हासिल की हो, आखिर उसकी दुश्मनों से रक्षा भी तो चंदे से ही होगी!'

'नहीं, नहीं, नहीं!' जनता और भी क्रोध से चिल्ला उठी—'हम अपने देश के नाम पर चंदा नहीं देंगे। हम अपने देश की सीमाओं की

रक्षा के लिए सर्वस्व सौंप देंगे, मगर चंदे के नाम पर नहीं, बल्कि देश के प्रति अपने फर्ज को पूरा करने के लिए। बोलो—भारत माता की—ई-ई'

'ज्जै, ज्जै, ज्जै, !'

'बोलो, जवाहरलाल नेहरू की— ई-ई-ई'

'ज्जै, ज्जै, ज्जै !'

०

क्रुद्ध जनता वापस लौट गई। उसने आज नेता तपोर्द्धन और दुलारेलाल की जै बोलने से पहली बार इन्कार कर दिया था। आज पहली बार दोनों महान् नेता अपनी अविवेकशील जनता से नाराज हो गए। पीछे खड़ी महिलाओं ने उनके चेहरों पर से पसीना पोंछा और 'सर्वोदय कुटीर' की ओर वापस ले चलीं। तभी नेता तपोवर्द्धन जी ने देखा कि जनता का एक प्रतिनिधि उनके पीछे-पीछे आ रहा है। उन्होंने डाँटकर पूछा—"क्या है ?"

"हुजूर, एक सवाल का उत्तर चाहता था !" जनता का प्रतिनिधि सहम गया।

"सवाल का उत्तर ? सत्य में या झूठ में ?" नेता तपोवर्द्धन थोड़ा नरम हो आए।

"महाराज, आप तो 'सत्यमेव जयते' वाले महान् नेता हैं ! 'असतोमा सद्गमय' वाले नेता हैं। आप कैसे झूठ में उत्तर देंगे ?"

"तो, चलो, हमारे घर आओ !"—नेता जी कार में बैठकर, चले गए। घंटे-भर तक बस की 'क्यू' में खड़ा रहने के बाद, जनता का प्रतिनिधि भी 'सर्वोदय कुटीर' की ओर जानेवाली 'बस' में बैठ गया।

जिस समय जनता का प्रतिनिधि 'सर्वोदय कुटीर' पहुँचा, दोनों महान् नेता अपने 'ड्राइंग-रूम' में बैठे हुए थे। डरते-सहमते हुए जनता का

प्रतिनिधि अन्दर पहुँचा तो थोड़ी देर इधर-उधर ताकता ही रह गया। कीमती मखमली पर्दे चारों ओर। नीचे ऐसे कारपेट, जिन पर पाँव रखते हुए जनता के प्रतिनिधि को ऐसा लग रहा था, जैसे गुलाब के फूलों पर चल रहा हो। चारों ओर महात्मा गाँधी और जवाहरलाल नेहरू जी के आदमकद चित्र ! इनके अलावा खुद नेता तपोवर्द्धन और दुलारेलाल के दो भव्य चित्र !

"बैठो !"

प्रतिनिधि अचकचाकर, नीचे फर्श पर ही बैठ गया। दोनों नेता सामने कोचों पर अधलेटे-से, थके हुए बैठे थे।

"अब पूछो, क्या पूछना चाहते हो तुम ?"—नेता तपोवर्द्धन बोले।

"महाराज !"—प्रतिनिधि काँपती हुई आवाज में बोला—"मैं सिर्फ यह पूछना चाहता था कि आप लोग हमें भेड़ें कहते थे और अपने को गड़ेरिया—उस आश्वासन का क्या हुआ ? हमारे खुशहाल भविष्य का क्या हुआ ? हमारे जान-माल का क्या हुआ ? हमारी हालत तो गुलामी के दिनों से भी बदतर हो गई है। हम जहर खा रहे हैं, कुओं में कूद रहे हैं। दरिद्रता के मारे हम पशुओं से भी दयनीय हो गये हैं—और आप लोग आजादी से पहले तो हम से भी खस्ताहाल थे, मगर आज कोठियों, कारों और सुन्दरियों के मालिक हैं ! हम ही आजादी के पहले भी बलिदान देते थे—हम ही आजादी के बाद भी भुखमरी, बेकारी में आत्महत्यायें कर रहे हैं। हम ही आजादी के पहले भी 'टैक्स' देते थे और हम ही आजादी के बाद और भी बेशुमार 'टैक्स' आप लोगों को देते-देते उजड़ गए ? आखिर आप लोगों के मजे-ही-मजे क्यों ? हम लोगों को सजा-ही-सजा क्यों ?"

"रामसिंह !" नेताजी ने कड़क कर, नौकर को आवाज दी। रामसिंह आया सिर झुकाए, तो नेता तपोवर्द्धन बोले—"आलमारी में से सच बोलने वाली दवा निकालो !"

जनता के प्रतिनिधि ने देखा, गोदरेज की बड़ी आलमारी के ऊपर 'सत्यमेव जयते' की सुनहरी तख्ती ठुकी हुई थी।

रामसिंह ने 'स्कॉच ह्विस्की' और सोडा की बोतलें नेताओं के सामने छोटी-सी खूबसूरत तिपाई पर रख दीं और दो गिलास भी।

बड़ी देर तक दोनों नेता आपस में जाम टकराते हुए, 'सच बोलने की दवा' पीते रहे। जनता का प्रतिनिधि श्रद्धा और आश्चर्य से अभिभूत देखता रहा। जब दोनों नेता काफी सुरूर में आ गये, तो उन्होंने अपनी सत्य की ज्योति से चमकती हुई आँखें जनता के प्रतिनिधि की ओर घुमा दीं—"तो तू सत्य को जानना ही चाहता है ?"

जनता का प्रतिनिधि सहम गया। उसने सिर्फ सिर हिला दिया।

तब दोनों महान् नेता सम्मिलित स्वर में ब्रह्म-सत्य बोले—"सुन मूर्ख ! हम आज भी गड़ेरिये ही हैं, और तू आज भी भेड़ है ! तेरे लाखों-करोड़ों साथी-बिरादरी भी भेड़ें हैं। और मूर्ख, 'टैक्सों' का जहाँ तक सवाल है, उसके सिलसिले में परम सत्य यही है कि ऊन हमेशा भेड़ों के जिस्म पर से ही उतारी जाती है, गड़ेरियों के जिस्म पर से नहीं !"

नेताजी की चुटिया

ओम विष्णवेनमः ओम विष्णवेनमः बुदबुदाते हुए ठाकुर साहब ने अपने सिर पर हाथ फेरा ही था कि एकाएक ऐसे उचककर खड़े हो गये, जैसे किसी साँप के फन पर हाथ पड़ गया हो।

जब तक मैं कुछ अनुमान लगाने की कोशिश करूँ, तब तक अत्यंत विषाद और घृणा के साथ वो चिल्ला उठे—"पंकज साहब, मैं धर्मभ्रष्ट कर दिया गया हूँ!"

उन-जैसे प्रौढ़ और मँजे हुए नेता का इस तरह अत्यंत भावावेश में आकर चिल्ला उठना मेरे लिये इतना आकस्मिक था कि मुझे हँसी भी

छूट सकती थी, जो स्थिति को देखते हुए बेहद गलत होती। दरअसल मेरा ध्यान उनके 'धर्मभ्रष्ट कर दिया गया हूँ', वाक्य की जगह उनकी अत्यंत विषादपूर्ण मुद्राओं पर केन्द्रित हो गया था। मेरे थोड़ी देर तक 'नॉन-सीरियस' रह जाने की वजह, शायद, यह भी हो सकती है।

लकड़ी की चौकी पर साफ धुली हुई धोती पहने हुए ठाकुर साहब खड़े थे। उनका दायाँ पंजा अभी तक सिर पर ही फैला हुआ था। आँखें जैसे गुस्से से फट पड़ने को हो रही थीं। उनके मोटे होंठ जिस कदर आपस में बजबजा रहे थे, उससे एक अजीब-सी घृणा के साथ-साथ मुझे आश्चर्य भी हो रहा था कि यह वही आदमी है, जो अपनी शहदजबानी और कूटनीति के लिये इस छोटे-से शहर का सबसे ज्यादा प्रसिद्ध नेता है ?

दरअसल ठीक इस मुद्दे पर रुककर एक बार इस छोटे-से खूबसूरत पहाड़ी शहर के प्राकृतिक सौंदर्य को सरसरी तौर पर स्मरण कर लेने की इच्छा हो रही थी। क्योंकि ठाकुर साहब की कोठी की इस सामने पड़ने वाली खिड़की से आर-पार तक झाँकने पर रस्सियों के सहारे दोमंजिला-तिमंजिला मकानों को एक सीध में लटकाकर बनाया गया-सा शहर और भी ज्यादा खूबसूरत लगता है। मगर ठाकुर साहब जिस रौद्रमुद्रा में खड़े थे, वह इतना स्तम्भित कर देनेवाला था कि शायद, इतनी हैरानी में मैं तब भी नहीं पड़ता, अगर उन्हें अचानक 'हार्ट अटेक' हो गया होता और वो छत की रेलिंग से लटका दिये गए मुर्दे की तरह स्थिर हो गये होते। ...हालाँकि उतने आग्रह के साथ अपने यहाँ भोजन पर आमंत्रित करने वाले मेजबान के प्रति इस तरह की दुष्कल्पना अमानवीय ही कही जा सकती है। मगर, विश्वास कीजिये, उस लगभग विचारशून्य कर देनेवाली स्थिति की जकड़ से छूटने के लिये इतना कल्पनाशील होना जरूरी हो सकता था।

कहाँ कहीं पास ही रसोईघर से कचौरियों के तले जाने की सी गंध ! खिड़की से आर-पार दिखता हुआ वह छोटा-सा पत्थर-अल-पत्थर शहर और सुबह-सुबह के कोहरे से ढँकी हुई हिमालय रेंज की सदाबहार घाटियाँ—और कहाँ यह बिल्कुल ही संदर्भहीन और अप्रत्याशित स्थिति कि शहर का इतना प्रसिद्ध नेता और भूतपूर्व एम० एल० ए० किसी बिफरे हुए जानवर की तरह होंठ बजबजा रहा है—"हरे राम, मैं तो धर्म-भ्रष्ट दिया गया हूँ ! अब हम हिंदुओं का सर्वनाश नजदीक आ गया है। अब ससुरी इस जनेऊ को ही धारण किये रहने की कौन-सी जरूरत रह गई....कहता हूँ साले हीरो से कि ले साले, एक उस्तरा इस पर भी मार दे !"

अगर मुझे जरा-सी भी झपकी आ रही होती, (जैसा कि रात के दो बजे तक कवि-सम्मेलन में हिस्सा लेने की वजह से सम्भव भी था, तो मैं सोच सकता था कि अर्द्ध-सुषुप्ति की स्थिति में किसी मुगलकालीन 'थीम' पर लिखे गये नाटक का कोई दृश्य देख रहा हूँ। शुक्र है कि अगले ही क्षण ठाकुर साहब चौकी पर से नीचे उतर आए और दोनों हाथ जोड़कर अत्यंत खेद के साथ बोले—"पंकज साहब, मेरे उजबकपन के लिये मुझे क्षमा करेंगे। अत्यंत दुख के साथ यह कहने को लाचार हूँ कि मैं आपको इस समय भोजन करा सकने में असमर्थ हूँ। एक अतिथि से इस तरह की बात कहना हम हिंदुओं के लिये कितनी लज्जास्पद बात हो सकती है, आप समझ सकते हैं। मगर मैं लाचार हूँ और अब तो भोजन तभी करूँगा, जब या तो अपनी जनेऊ भी तुड़वाकर ठाकुर गजाधर सिंह से गफ्फार हुसेन बन जाऊँगा और या इस जिले में रहने वाली समूची हिंदू जाति को किसी भी दिन मेरी ही तरह धर्मभ्रष्ट कर दिये जाने के खतरे से बचा लूँगा !"

अगर इस तरह की सनसनीखेज बातें न करके, ठाकुर साहब सीधे-सीधे सिर्फ भोजन करा सकने में ही असमर्थता व्यक्त कर रहे होते, तो

उनके अत्यंत विषादग्रस्त चेहरे को देखकर मैं उनके पिता, माता या अन्य किसी प्रियजन की आकस्मिक मृत्यु की बात सोचकर, संवेदना व्यक्त करते हुए वापस होटल में जाकर खाना खा सकता था। मगर अब स्थिति अत्यंत नाजुक थी। मैं धीरे-धीरे इस तरह का अनुमान लगाने की कोशिशें कर सकता था कि जरूर कोई अप्रिय घटना घट गयी है। असल में विषाद की जिस चरममुद्रा में ठाकुर साहब ने इतनी बातें कहीं थीं, एकाएक उनसे यह पूछने का मुझे होश ही नहीं रहा कि आखिर ऐसा हुआ क्या है ?

अब मैं पूछने की कोशिश करना ही चाहता था कि तब तक ठाकुर साहब सफेद संगमरमर की शिवमूर्त्ति के सामने नतमस्तक होकर, झुक गए—" हे प्रभो, हमारे देश और धर्म रक्षा करना !"

इस बार जब मूर्ति के चरणों पर से ठाकुर साहब ने अपना सिर उठाया तो उनकी आँखें गीली थीं। धोती के छोर से आँसू पोंछते हुए, ठाकुर साहब खड़ाऊँ पहनने के बाद, काफी तेजस्वी स्वर में बोले—"मैं वह शख्स रहा हूँ, पंकज साहब, जिसे व्यक्तिगत तौर पर आप दस जूते मार लीजिये, तो हरि का नाम स्मरण करता हुआ आगे निकल जाऊँ। मगर देश, धर्म और इंसानियत के मुँह पर पड़ने वाले जूतों को मैंने कभी बर्दाश्त नहीं किया !"

मेरी ओर से कोई उत्तर न पाकर, ठाकुर साहब कमरे से बाहर निकलने की तैयारी करते हुए बोले—"मगर, पंकज साहब, मैं भी हद दर्जे की बेवकूफी कर रहा हूँ। में अनशन कर लूँ, यह तो जरूरी है, मगर आपको तो भोजन करवा ही सकता हूँ। अरे भई, तुम्हारा नाम क्या है जगततारन....देखो, कविजी को छोटे वाले कमरे में बिठाकर इनको भोजन करवा देना..."

जब तक 'अच्छा साहब, मुझे क्षमा करिएगा' कहते हुए ठाकुर साहब आगे बढ़ जाएँ, मैंने तुरन्त कहा—"देखिये, आप इस बुरी तरह से

परेशानियों से घिरे हुए हैं, ऐसे में मेरा यहाँ बैठकर भोजन करना उचित नहीं लगेगा। आपकी कृपा चाहिये, भोजन तो कोई ऐसा चीज नहीं है, फिर कभी..."

"तब आप एक काम कीजिये, साहब ! मेरे साथ जरा शहर चले चलिये। हो सकता है, मामला सँभल जाए और कुछ विलम्ब तो जरूर हो जाएगा, लेकिन हम वापस लौटकर साथ-साथ भोजन कर सकते हैं। ...अरे भई, तुम्हारा नाम क्या है जगततारन, देखो, कचौरियाँ-पूरी बनाना अभी रोक लेना...जरा कायदे से देखिये, तो साहब, इस वक्त हमारा पूरा देश संकटों से घिरा हुआ है "

कचौरियों से सीधे देश पर बात फैला देने की अद्भुत क्षमता वाले राष्ट्रीय नेताओं में मैंने अब तक जो सबसे बड़ा राष्ट्रीय गुण देखा है, वह यही कि ये लोग कभी 'मैं-तुम' पर बात ही नहीं करते। समूचे देश-काल का संदर्भ इन लोगों की बातचीत का विषय होता है।

यह ठीक है कि कल रात वाले 'समर फेस्टीवल' के कवि-सम्मेलन में चीन और पाकिस्तान के विरुद्ध मैंने भी राष्ट्रीय रस की कवितायें कई बार सुनाई थीं और उनपर तालियों की गड़गड़ाहट भी कुछ कम नहीं हुई। मगर इस वक्त यह आत्महीनता मुझे जरूर महसूस हुई कि आज भी इस देश के कवियों की जगह, इसके नेताओं में ही वह अद्भुत वाग्क्षमता है कि लाखों-लाखों को एकसाथ झकझोर दें। ऐसा अनुभव करने की वजह यह भी हो सकती थी कि इन कुछ ही मिनटों में ठाकुर साहब ने जिस ढँग से और जिस तरह की बातें की थी, मैं खुद एक अजीब तरह की बौखलाहट महसूस कर रहा था। इस तरह की बौखलाहट को किसी तरह का साम्प्रदायिक संस्कार मान लेना अपने ही साथ अन्याय लगता है।

छोटी-छोटी करीनेदार सीढ़ियाँ चढ़ते हुए, ऊपर मुख्य सड़क में आ जाने तक ठाकुर साहब ने संक्षेप में मुझे किस्सा बता दिया, मगर एकाएक मैं इस बात की कल्पना भी नहीं कर पाया था कि बात इस हद तक भी जा सकती है।

अगर आपने कभी इस छोटे-से पहाड़ी शहर की यात्रा की है, तो आपने देखा होगा कि इसकी अधिकांश सड़कें चौड़े-चौड़े पत्थरों से पाटकर बनाई गई हैं। हालाँकि मुझे कल ही लौट जाना है और अभी बरसात का मौसम भी दूर है, मगर मुझे यह सोच लेने में कोई अप्रासंगिकता नजर नहीं आती कि बरसात में जूते पहनकर इस तरह की पथरीली सड़कों पर चलना बहुत मुश्किल होता होगा। अब इसे आप मेरा कवि-संस्कार कह लीजिये या 'एस्थेटिक सेंस'—मुझे प्राकृतिक दृश्यों या पहाड़ी जगहों को देखने पर अक्सर महसूस होने लगता है, जैसे यह सब-कुछ मेरे लिये है...और, शायद, यही वजह इस बात की भी हो सकती है कि मैं तुरत मौसम, सड़क या पहाड़ियों की चढ़ाई से होनेवाली असुविधाओं के बारे में भी सोचने लग जाता हूँ और यात्रायें अक्सर इसीलिये सिर्फ कल्पना में ही तय होकर रह जाती हैं।

''सवाल इस वक्त यह किसी गजाधर बाबू, किसी नेता या किसी एक आदमी का नहीं है—पूरे देश का है! पूरे धर्म का है!''

ठाकुर साहब की भर्राती आवाज से मेरा प्रकृति पर केन्द्रित होता हुआ मन एकाएक फिर यथार्थ की तरफ लौटा, तो मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि वहाँ पर अब तक लगभग साठ-सत्तर लोग एकत्र हो गए थे। स्त्री-पुरुष, बच्चे-जवान-बूढ़े सभी थे, जैसे आम राजनैनिक सभाओं में भी हुआ करते हैं। वातावरण के काफी तनावपूर्ण हो चुकने की कल्पना कर लेने के बावजूद, मैं एक यह बात तो सोच ही गया कि इस देश में

और चाहे कोई सुविधा हो, या न हो—मगर श्रोताओं की कितनी बड़ी सुविधा है ।

अब जैसा कि इस शहर की यात्रा कर चुके होने पर आपने देखा होगा कि शहर के इस कोने में आमतौर पर दस-पाँच आदमी भी एक साथ कम ही दिखाई देते हैं । इस बात का सही-सही अंदाज, शायद, इस बात से भी लगाया जा सकता है कि अभी परसों ही मैंने देखा था कि एक विदेशी चित्रकार इसी सड़क के किनारे पर बैठा कोई 'लैण्डस्केप' बना रहा था और जितनी देर में इक्के-दुक्के लोग इधर से गुजरते थे, वह उनकी छोटी-छोटी पहाड़ी झाड़ियों-जैसी आकृतियाँ बना चुका होता था ।

दरअसल मैं बीच-बीच में इस तरह की लगभग संदर्भहीन-सी बातें इसलिये कर रहा हूँ कि आप उस तरह की उत्तेजना से बच सकें, जो ठाकुर साहब के धर्मभ्रष्ट कर दिये जाने की बात को लेकर वहाँ इकट्ठे हो गये लगभग सभी लोगों के चेहरों को इतना बदल चुकी थी कि शायद, ज्यादा गौर से देखने पर संकट के समय किसी बियाबान जंगल में एक-साथ खड़े हो गये जानवरों को देखने की सी अनुभूति होने लगे !

जहाँ तक बातचीत में विषयांतर से होनेवाले रसभंग का प्रश्न है, शायद, आप लोगों से ज्यादा इस बात का अहसास मुझे है । क्योंकि अगर आप कल रात के कवि-सम्मेलन में आए होंगे, तो आपने कविता-पाठ से पहले की मेरी यह पंक्ति जरूर सुनी होगी—और शायद, ताली भी बजाई होगी—कि 'इस चीन और पाकिस्तान के हमलों ने हमें चाहे और कुछ न दिया हो, मगर काव्य का दसवाँ रस जरूर दिया है—राष्ट्रीय रस !'

तो जनाब, यह जानते हुए भी कि इस देश के लोगों को—जिनमें साफ है कि आप भी शामिल हैं—किसी भी तरह की सामूहिक उत्तेजना से बचाने की कोशिश करना कितना गलत और कितना बेमानी है, मैं बीच-बीच में विषयांतर कर देने की अपनी प्रवृत्ति के लिये कोई अफसोस व्यक्त नहीं

करूँगा। कहने को तो आप यह भी कह सकते हैं कि इस देश के कवियों ने इन पिछले बीस-इक्कीस वर्षों में इसके अलावा और कुछ किया भी नहीं है।

लगभग साढ़े दस-पौने ग्यारह का वक्त होगा, जब हम लोग घर से बाहर निकले होंगे। (यहाँ मैं 'हम लोग' कहना शुरू कर देने को इस-लिये लाचार हो गया हूँ कि ठाकुर साहब ने इस बीच बार-बार जिस तरह मुझे अपनी दुर्दशा के गवाह के रूप में लोगों के सामने रखा, उसमें 'मैं' कहने की इच्छा ही शेष नहीं रह गई है।) ....तो करीब सवा ग्यारह बजे तक हम लोग शहर के मुख्य गिरजाघर तक ही पहुँच पाए, जो ठाकुर साहब के घर से बमुश्किल एक फर्लाङ्ग दूर होगा।

०

जैसा कि ठाकुर साहब सीढ़ियाँ चढ़ते वक्त मुझे बता चुके थे कि उस हज्जाम की दुकान शहर के लगभग आखिरी कोने में, 'अप्सरा टाकीज' की बगल में है—मैं यह सोचकर परेशान होने लगा था कि अगर ठाकुर साहब के आगे बढ़ने की रफ्तार यही रही, तो वहाँ पहुँचते-पहुँचते कहीं शाम न हो जाए?

अभी तक मेरी समझ में यह बात नहीं आ पाई थी कि आखिर वो करना क्या चाहते हैं? न उन्होंने उस सारी बातचीत के दौरान ही मुझसे यह बात कही थी कि इस नाजुक मसले का क्या अंतिम हल उनके मस्तिष्क में है। मैं इस स्थिति से अब ऊब चुका था कि घर से बाहर निकलते ही उन्होंने सड़क के पहले ही मोड़ पर मजमा-जैसा लगा लिया था। और पूरे वातावरण में सिर्फ साम्प्रदायिक तनाव के अतिरिक्त और कोई चीज उभर नहीं पा रही थी। और अब यह बात हर अगले मोड़ पर दोहराई जायगी और समय व्यर्थ किया जायगा, यह सम्भावना मुझे बुरी तरह साल रही थी।

मैं मन-ही-मन यह निर्णय लेने की कोशिश करने लगा था कि ठाकुर साहब तो लोगों से बातचीत में उलझे ही रहेंगे, इसलिये मेरी मौजूदगी या गैर मौजूदगी की उन्हें कोई खबर नहीं रहेगी। अच्छा यह होगा कि मैं सीधे होटल जाकर भोजन कर लूँ और उसके बाद आराम से 'अप्सरा टाकीज' की तरफ चल दूँ। इस बीच-बीच की उकताहट के बावजूद, इस बिलकुल अप्रत्याशित रूप से घटित होते हुए नाटक की चरम परि-परिणति देख लेने की उत्सुकता तो मेरे मन में भी जड़ पकड़ ही चुकी थी।

मैं अभी निर्णय ले पाने की मुद्रा में उनके पास से थोड़ा अलग हट आने की बात सोच ही रहा था कि उनका हाथ मेरे कंधे पर आ गया··· ''आप लोग इन्हें नहीं जानते होंगे। ये हमारी हिन्दी के बड़े प्रसिद्ध कवि हैं। इस शहर के एक नागरिक के नाते इस साहित्य देवता के चरणों में यथा-सामर्थ्य अपनी भी भावनाओं के पुष्प चढ़ाने को अपना कर्तव्य समझ-कर, मैंने इनको सबेरे अपने यहाँ ही रूखे-सूखे की जूठन बिखेर देने का न्यौता दे रखा था।····अब देखिये कि अपने कुलदेवता शंकर के सामने ही इस साहित्यदेवता को भी बिठाकर मैं पूजा-ध्यान से निवृत्त होने की सोच ही रहा था कि 'ओम् विष्णवे नमः' का संकल्प पढ़ते हुए जो सिर पर हाथ ले जाता हूँ···''

अत्यन्त क्षोभपूर्ण मुद्रा में ठाकुर साहब फिर अपने हाथ को अपने सिर पर ले गए और बिना कुछ बोले ही उन्होंने सिर झुकाकर इस तरह चारों ओर घुमा दिया, जिससे सब लोग उनके चुटियाविहीन कर दिये जाने को देख सकें। वैसे इस तरह की बात कहना अभद्रता ही कहा जा सकता है, मगर जिस अतिनाटकीय मुद्रा के साथ अपनी चुटियाविहीन खोपड़ी पर हाथ सटाक् से फिराकर, उन्होंने दोनों हाथों को प्रश्नचिन्ह की तरह लोगों के सामने खड़ा कर दिया—मुझे लगा यह उनका सिर नहीं अशर्फियों से भरी हुई कोई हाँडी है, जिस पर बैठा हुआ साँप गायब हो गया है।

जैसा कि मैं पहले ही कह चुका हूँ, एक कल्पनाशील कवि होने के नाते इस तरह की व्याख्याओं में उलझ जाना मेरे लिये बिलकुल स्वाभाविक है।···मगर जिस तरह अपनी चुटिया की व्याख्या उन्होंने की, उससे मैं भी हतप्रभ रह गया।

"यों तो मैं अक्सर खादी की टोपी पहने रहता हूँ, मगर आप लोगों ने फिर भी गौर करने पर देखा होगा कि ब्रह्मगाँठ लगा लेने के बावजूद अक्सर मेरी चुटिया टोपी से बाहर भी दिखाई दे जाती थी ?···एक दिन साला एक म्लेच्छ क्या कहता है कि 'एम० एल० ए० साहब आपकी यह चुटिया किसी छोटे-मोटे साँप से कम लम्बी क्या होगी ?···अब यहाँ माँ-बहनों के सामने मैं उस तरह की बातें नहीं करूँगा, मगर मेरी आहत्-आत्मा में से तत्काल यही शब्द निकले कि 'हाँ, सालो हरामजादो, यह एक छोटा-मोटा साँप ही है, जो हमारे धार्मिक संस्कारों और विचारों पर मणिधर नाग की तरह कुण्डली मारे बैठा रहता है। तुम साले चोट्टों की क्या बिसात है, हजारों-हजारों वर्षों का इतिहास इस मणिधर नाग को हमारे मस्तक पर से नहीं हटा सका···और आप लोग सभी इस बात को यहाँ पर अपने इस अदना सेवक गजाधर सिंह से वेद-वाक्य की तरह सुन लीजिये, जिस दिन हम हिन्दुओं के शरीर पर से ये दो तक्षक हटा दिये जाएँगे, उसी दिन इस देश का, अजी इस देश का क्या, इस पूरे विश्व का विनाश हो जाएगा !"

दायें हाथ की तर्जनी और अँगूठे से पकड़कर उन्होंने जनेऊ को हवा में ऊँचा उठा दिया था और उपस्थित भीड़ के चेहरों को देखने पर मैं महसूस कर रहा था कि इस नेता किस्म के व्यक्ति में इन तमाम लोगों को मंत्रविद्ध साँपों की तरह नचा सकने की क्षमता है।

मैं खुद अपने अंदर एक अजीब किस्म की लिजलिजाहट महसूस करने लगा था और मस्तिष्क में विचारों के उभड़ने की जगह किसी साँप के रेंगने की जैसी सनसनी अनुभव हो रही थी।

तो आप लोगों की क्या सलाह है ?"—ठाकुर साहब ने अपनी जनेऊ को खींचते हुए प्रश्न किया—"मैं तो तय कर चुका हूँ कि जहाँ राँड गई, तो भाँड़ भी सही।...ऐन दुर्गादेवी के मंदिर के मैदान में अपने इस यज्ञोपवीत को भी उतारकर, 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये' कहते हुए, आत्म-दाह कर लूँगा ! नहीं साले आजादी के संग्राम में सही, देश और धर्म के नाम पर कभी भी शहीद हुआ जा सकता है। क्योंकि यह आप लोगों के सोचने की बात है कि जिन हिम्मतबरदारों ने ठाकुर गजाधर सिंह को नहीं बख्शा, जिसको कि दो-दो बार आप ही लोग अपना एम० एल० ए० बनाकर, एसेम्बली में भेज चुके हैं—वो औरों को क्या बख्शेंगे !"

उस समय तो मुझे खीझ हो रही थी और ठाकुर साहब किसी हद तक मूर्ख भी लगने लगे थे, मगर वहाँ से आगे बढ़ते ही जो अगला मोड़ पार किया, तो मैं स्तम्भित रह गया। सैकड़ों लोगों का समूह हमारी ही तरफ बढ़ा आ रहा था। और यह कहने की तो जरूरत ही नहीं कि पिछले मोड़ पर जितने लोग एकत्र हुए थे, उनमें से अधिकांश पीछे-पीछे चले ही आ रहे थे।

मुझे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि उस भीड़ में आगे-आगे आदर्श महिला विद्यालय की प्रिंसिपल शारदाजी भी थीं, जो अपने कालेज में कवि-गोष्ठी करने के सिलसिले में मुझसे बातें कर चुकी थीं।

जिस आत्मीयता और भावावेग के साथ उन्होंने 'ठाकुर साहब, हम लोगों को सब पता चल चुका है' कहा उससे एक तो मुझे हिंदुस्तान-जैसे देश में तार या टेलीफोन की मूल्यहीनता का अहसास हुआ। यह भी दुष्कल्पना मन में आई कि स्थिति के इस कदर नाजुक न होने की स्थिति में मैं उस दृश्य को बरसों से बिछड़े हुए पुराने प्रेमी-प्रेमिका का मिलन कह सकता था।

मुझे ठीक इसी वक्त कल अपने पुराने राजनैतिक जीवन के अनुभव सुनाने के सिलसिले में, जिसके लिये मुझे आग्रह करने की कोई आवश्यकता नहीं हुई थी, कही गई ठाकुर साहब की बात याद आ रही थी कि 'साहब, आजादी के आंदोलन को आगे बढ़ाने में शारदा बहन-जैसी स्वयं-सेविकाओं का भी बहुत बड़ा योगदान रहा ?' ''और मैं सोच रहा था कि आजादी की लड़ाई को न सही, मगर जुलूसों को आगे बढ़ाने में तो ऐसी महिलायें जरूर बहुत बड़ा योगदान दे सकती है।

पाँवों में खड़ाऊं और साफ-सुथरी तथा महीन धोती, जिसका फेंटा ठाकुर साहब ने अपने बायें कंधे पर डाल लिया था और माथे पर चंदन का अर्द्धचंद्राकार तिलक तथा गले में झूलती हुई जनेऊ—आँखों में बेइंतहा महसूस होता हुआ विषाद और आक्रोश, जो अब स्थिति की अनुकूलता को देखते हुए करुणा का रूप धारण करने लग गया था। और आगे-पीछे न-जाने कितने प्रकार की प्रतिक्रियायें व्यक्त करते हुए लोगों की भीड़ !

मुझे उस वक्त यह जरूर लगा कि मैं अपने कवि होने के चक्कर में स्थिति की संकटापन्नता को बहुत कम करके देख रहा हूँ और अगला कोई भी क्षण उस विस्फोट का हो सकता है, जिसे सार्वजनिक भाषा में 'दंगा' कहा जाता है।

०

उस छोटे-से शहर में मुसलमानों की आबादी बहुत कम थी और उसे देखते हुए भीड़ के लोगों की यह प्रतिक्रिया बहुत अस्वाभाविक या गलत नहीं लग रही थी कि 'साहब, जब ससुरे''भर लोगों की बदमजगी और बदमाशी का यह हाल है, तो कहीं इन लोगों की बसासत यहाँ ज्यादा होती, तो सारे हिंदू बेमौत मारे गये होते।'

धीरे-धीरे मैं भी इस नतीजे पर पहुँच रहा था कि पूरी तरह से

ध्यान दिला देने और मना कर देने के बावजूद उस हज्जाम का ठाकुर साहब की चुटिया को काट डालना एक बहुत बड़ी बेवकूफी या बदमाशी तो थी ही ।

अब तक ठाकुर साहब यह भी बता चुके थे कि सवेरे-सवेरे अपने एक 'क्लाइंट' से अत्यंत आवश्यक परामर्श के सिलसिले में वो 'राइजिंग कार्नर' की तरफ निकल गए थे और वापस लौटते वक्त दुर्भाग्य से 'बम्बई हेयर कटिंग सैलून' में जा फँसे थे कि हजामत बनवा लें, तो घर पहुँचकर नहा-धोकर, पूजा-पाठ करके निश्चित भाव से अतिथि को भोजन करायें । चूँकि उस 'हीरो' से उन्होंने पहले कभी बाल नहीं कटवाए थे, इसलिए उन्होंने पहले ही अनुरोध कर दिया था कि 'भाई जान, चुटिया बचाकर 'कटिंग' कीजिएगा ।'

'और साहब, इस भाई-चारे व शराफत से बातें करने का जो नतीजा मुझे हासिल हुआ, आप लोग देख ही रहे हैं !'

चौक बाजार में पहुँचते तक यह स्थिति हो गयी थी कि शायद, शहर के लगभग सभी बड़े नेता और नागरिक इकट्ठा हो आए थे और लोगों का तनाव के मारे बुरा हाल दिख रहा था ।

तभी पुलिसवालों की एक टोली को आते हुए देखकर, ठाकुर साहब जोरों से चिल्लाये—"देखिये, साहब, हरामजादों का शरारतपना ! मेरे धर्म का नाश करके, खुद ही पुलिस थाने में भी खबर दे आए हैं शायद, कि शहर में दंगा-फिसाद का अंदेशा है !···चोर मुद्दई, साहूकार मुद्दालेह इसी को कहते हैं।···खैर, साहब, यहाँ भी पूरा आई० पी० सी० घुट्टी में पिया हुआ है, सिर्फ बलात् धर्मभ्रष्ट करने की बिना पर ही दफा···"

तेजी से आते हुए पुलिस वालों को भी भीड़ में श्रोताओं की तरह शामिल होते हुए देखकर, शायद, उन्हें कुछ निराशा भी हुई और कुछ गुस्सा भी कम हो गया, वो एक झटके साथ आगे बढ़ गए ।

मगर कुछ ही कदम आगे बढ़ने पर उन्हें फिर रुक जाना पड़ा। अपनी वेश-भूषा से मुसलमान लगते हुए कुछ लोग बड़े परेशान चेहरे लिये हुए ठाकुर साहब के करीब आते और उनसे माफी माँगते जा रहे थे कि 'उस हरामी की औलाद की तरफ से हम लोग आपसे माफी माँगते हैं, ठाकुर साहब ! आप तो गरीबों की परवरिश करने वाले लोगों में से हैं। कहिये, तो उस हरामजादे की बोटी-बोटी अलग कर दी जाए आपके ही सामने ? आप लोगों के कदमों पर तो, साहब, हम लोगों की पुश्तें बीत गयीं, मगर किसी तरह की गुस्ताखी और बदसलूकी का तसव्वुर तक हमारे दिमागों में नहीं आया होगा।'

उन लोगों की विनम्रता-भरी बातों से मेरा अनुमान था, ठाकुर साहब को अपना गुस्सा उगलने की और ज्यादा शह मिलेगी, मगर उन्होंने एका-एक मौलवीनुमा एक व्यक्ति के कंधे पर हाथ रखा और बोले—"बोलो, मौलवी करामत हुसैन ! आज तक कभी तुम लोगों के साथ हमने भाई-चारे से नीचे उतर के कोई बात की है ?"

मौलवी साहब लगभग आधा झुक गए—"अरे, हुजूर, क्या बात करते हैं आप ! आप-जैसे रहनुमाओं की वजह से तो हमारे जेहन में कभी ख्याल भी नहीं आया कि हम दीन या दुनियादारी, कहीं से भी आप लोगों से गैर या जुदा हैं। इतना फर्क जरूर है कि एक जिसको आप लोगों ने राम-कृष्ण महाराज या शंकर महाराज करके जाना, उसी गैबी ताकत को हमने खुदा मानकर सिजदा किया।...मैं तो साहब हैरत और गुस्से से अपने ही लिये बेगाना-सा हो गया, जो सुना कि उस साले हरामजादे ने ठाकुर साहब के साथ बदसलूकी कर दी है।...आपको, हुजूर, यकीन नहीं आएगा। ये मिर्जा साहब और नूरीसाहब ही नहीं, बहुत-से हिंदू भाई भी गवाह हैं।...मैं तो उसी बदहवासी में सीधे आपकी खिदमत में आने की जगह, जाके पहुँचा उसी हरामजादे के सैलून में और मुँह से एक भी लफ्ज निकाले बिना जो उतार के जूता शुरू किया, तो

फिर तभी हाथ रुका, जब बगल से ब्रह्मप्रकाश मास्टर साहब ने आके हाथ पकड़ लिये कि 'मौलाना, पागल तो नहीं हो गये हो, लौंडा जान से जा रहेगा !'....मेरे मुँह से तो ये ही निकला, 'ये साला कम्बख्त तो न-जाने कितने बेगुनाहों की जानें हराम कर देगा !...ओफ़्फ़ोह, किस क़दर नाज़ुक वक़्त पूरे मुल्क में आया है, साहब, कि खुदा ही मालिक है। और ऐसे में किसी हरामज़ादे की ज़रा-सी भी ग़फ़लत कितनी बड़ी ग़लतफ़हमियाँ पैदा कर सकती है !''

मुझे लगा कि ठाकुर साहब का पारा और कुछ नीचे उतर चुका है, क्योंकि उनके चेहरे और आँखों पर का तनाव भी कुछ हट चुका-सा लगता था और उनके मोटे होंठ भी बजबजा नहीं रहे थे। शारदा बहन जी अब भी बिलकुल उनकी बग़ल में ही खड़ी थीं और ऐसा लग रहा था, इसी तरह की महिलाएँ सती होती रही होंगी।

मैं ठाकुर साहब के यों एकाएक शांत पड़ जाने पर आश्चर्यचकित ही था कि उन्होंने मौलवी साहब से अपेक्षाकृत तल्ख आवाज़ में पूछा, ''क्या बताता था वो लौंडा ? मना कर देने के बावजूद मेरी चुटिया काट देने की वजह क्या बता रहा था ?''

''उस हरामज़ादे पर तो वो जूते पड़े कि ठीक से तो उसकी ज़ुबान खुल ही नहीं रही थी। बस, बदहवासों की तरह यही चिल्लाता जावे था कि 'खुदा क़सम, हमने नहीं काटी ठाकुर साहब की चुटिया....अब्बा क़सम, हमने नहीं काटी....बुरी तरह घबरा गया था हरामज़ादा और रोवा ही जा रहा था....गोया किसी गैबी हादसे का शिकार हो गया हो।''

''अजी, वह आप लोगों के ग़ुस्से से खौफ़ खा गया कि अगर कहता हूँ कि 'हाँ, मैंने काटी और इस वजह से काटी' तो मौलवी साहब मुझे ज़िन्दा नहीं छोड़ने के !....अरे, उस बेवक़ूफ़ ने इतनी-सी बात नहीं कह

दी होती कि 'ठाकुर साहब, ग़लती से क़ैंची चल गयी' तो मैं यही सोच कर ग़म खा लेता कि अरे, ग़लत तो हमारे बच्चे भी हज़ार करते हैं। मगर वो तो साला हीरो है, हीरो ! मेरे बाल बनाते वक़्त भी उल्लू जाने क्या गुनगुनाता जा रहा था कि बहारें फूल बरसायें, मेरा महबूब आया है, मेरा महबूब आया है···"

ठाकुर साहब को अब बेसाख्ता बच्चों की तरह हँसते हुए देख कर, मैं और भी ज्यादा हतप्रभ हो गया था। कहीं जो एक हलका-सा पूर्वग्रह बन गया था कि यह आदमी छोटी-सी बात को बहुत तूल दे रहा है, वह अपने-आप खत्म हो गया। आसपास भी लोग कुछ इसी तरह की प्रतिक्रियाएँ व्यक्त कर रहे थे कि 'साहब, इतना खुशमिज़ाज और मिलनसार नेता इस ज़िले में कोई नहीं है, मगर उस हरामज़ादे ने की ही ऐसी हरकत कि ठाकुर साहब को देखो, तो गुस्से और रंज का तमतमाया हुआ चेहरा एकाएक पहचानने में ही नहीं आए।"

"हम सभी लोग तहेदिल से उस हरामज़ादे की गफ़लत के लिए माफ़ी चाहते हैं और आगे हुज़ूर वहाँ तक चंद क़दम और चल लेने की तक़लीफ़ गवारा कर लें, तो लौंडे को आपके क़दमों पर डाल के हम लोग भी अपने-अपने घर को रवाना हों और उस खुदा का शुक्रिया अदा करें, जिसने आप-जैसा इखलाक-परस्त रहनुमा हम लोगों को दिया है।" कहते हुए, मौलवी साहब फिर ज़रा-सा झुक गये, तो ठाकुर साहब ने आगे बढ़ कर उन्हें गले से लगा लिया। मुझे लगा, इस छोटे-से शहर में इस सिरे से उस सिरे तक फाँसी की रस्सी की तरह तना हुआ सामूहिक उत्तेजना का वातावरण एकबारगी बदल गया है।

"अब आप लोग जाइए, मौलवी साहब ! उस कम-अक्ल और बदनसीब लौंडे को भी अब कुछ भला-बुरा कहने या मारने-पीटने की कोई ज़रूरत नहीं। आखिर बेचारा वह भी रोजी-रोटी का मारा हुआ न

मालूम कहाँ से इस शहर की शरण में आया हुआ है।" कहते हुए ठाकुर साहब ने मौलवी जी की पीठ थपथपायी और वापस मुड़े, तो शारदा बहन जी भी खाली पड़ी हुई जैसी आँखों में मुसकराहट भरने की कोशिश करते हुए, 'अच्छा ठाकुर साहब, नमस्कार !' कहती हुई चली गयीं। एक बार यों ही पूछ लेने को मन हुआ कि 'बहन जी, अपने कालेज में कब रखवा रही हैं काव्य-गोष्ठी ?' मगर कह नहीं पाया। दरअसल कालेज की लड़कियों के बीच कविता पढ़ने में जो सुख है, वही मुझ-जैसे हर कवि-सम्मेलनी कवि के लिए, शायद, सबसे ज़्यादा आकर्षण की चीज़ है। लेकिन इस वक्त शारदा बहन जी जिस 'मूड' में थीं, मुग्धता उसमें से चू पड़ने को हो रही थी और उसमें मेरे अपने मतव्य की कोई प्रासंगिकता रह नहीं गयी थी।

अब, लौटते हुए, ठाकुर साहब काफ़ी तेज़ चल रहे थे और जिज्ञासु-जनों के, अपनी वापसी को लेकर किये गये सवालों का उत्तर अत्यन्त संक्षेप में दे कर आगे बढ़ जाते थे।

अपने घर के पास वाले मोड़ पर पहुँच कर, उन्होंने हलवाई की दुकान से पाव-भर ताज़ा रबड़ी खरीदी और संतोष की साँस लेकर बोले, "चलिए, अतिथि को भोजन न करा पाने के पाप से भगवान् शंकर ने उबार लिया।"

भोजन करते वक़्त ठाकुर साहब अत्यंत प्रफुल्ल चित्त दिखाई दे रहे थे और सहसा यह विश्वास कर लेना भी कठिन था कि इसी व्यक्ति को सवेरे भी देखा था।

मेरी 'राष्ट्रीय रस' वाली बात की जी खोल कर दाद देने के बाद एकाएक ठाकुर साहब बोले, "मगर पंकज साहब, असली राष्ट्रीय रस आपको आज देखने को मिला होगा ?" और ठहाका लगा कर हँस पड़े।

जब तक वह ठहाका खतम करके चुप हों, मेरी स्मृति में वह रस्सियों के सहारे पहाड़ी पर लटकाये गये मकानों से बना हुआ-जैसा शहर फिर पूरा-का-पूरा कौंध गया—और मानसिक उत्तेजना से भरे हुए चेहरों की भीड़, जो किसी भी क्षण कूड़े के ढेर की तरह आग पकड़ सकती थी।

"देखिए, किसी और शहर में सिर्फ़ इसी बात पर क़त्ल के 'केसेज़' भी हो सकते थे।....मगर हम पहाड़ियों को हमेशा शांति और भाई-चारे के साथ ही रहना पसंद है।....आप कचौरियाँ और क्यों नहीं ले रहे हैं, पंकज साहब! भाई, क्या नाम तुम्हारा है जगततारन, जरा रबड़ी का दोना भी लेते आना....हाँ, एक बात याद आयी। कल आपने पूछा था कि बासठ वाले 'इलेक्शन' में चौदह हज़ार वोटों की 'मैजारिटी' से जीतने के बाद भी, इस ताज़े 'इलेक्शन' में मैं क्यों हार गया?" ठाकुर साहब का चेहरा फिर कुछ बदलता हुआ-सा लगने लगा था।

मेरे चुप ही रह जाने पर, वे फिर हँस पड़े, "अब साहब, अक्सर सरकार से पत्र-व्यवहार करते समय भी 'भूतपूर्व एम. एल. ए.' लिखना पड़ता है, और यकीन कीजिए उस वक़्त यही लगता है कि हम वास्तव में भूत ही हो चुके हैं!"

इस बार ठाकुर साहब उतना खुल कर ठहाका नहीं लगा पाए। मेरा इस तरह लगातार चुप रहना, एक तरह की बदतमीजी में भी शुमार किया जा सकता है, इस अहसास से मैं थोड़ा आत्मसचेत हो गया।

"मैं तो, ठाकुर साहब, आपके स्वभाव की निर्मलता और क्षमाशीलता से बहुत प्रभावित हुआ हूँ। उतने गुस्से में आ जाने के बाद, इतनी सहजता के साथ अपनी चुटिया काट देने वाले हज्जाम को माफ़ कर देना!"

ठाकुर साहब के फिर बेतहाशा ठहाका लगा देने से, मेरी बात अधूरी ही रह गयी और मुझे यह सोच कर बुरा लगा कि औपचारिक तौर पर बोलने की कोशिश करने में, शायद, किसी हद तक चापलूसी का जैसा स्वर मेरी बातों में आ गया होगा, लेकिन ध्यान तुरन्त ही इस बात पर से भी हट गया।

ठाकुर साहब ने फिर अपना सिर थोड़ा-सा मेरी ओर झुका दिया, "यह आप मेरी कटी हुई चुटिया देख रहे हैं ?...यह पिछले बत्तीस वर्षों से हमेशा सिर्फ़ इतनी ही बड़ी रही है !"

इतना कह कर, वे चुप हो गये और मेरे चेहरे की तरफ़ एकटक देखते रहे, जिससे मैंने अपने को थोड़ा-सा असंतुलित अनुभव किया और पूछ बैठा, "तो क्या उस हज्जाम लड़के ने आपकी चुटिया नहीं काटी थी ?"

"नहीं...."

यह 'नहीं' उनके मुंह से कुछ ऐसी आवाज़ में निकला कि उससे निहायत बेहयाई की-सी अनुभूति हो सकती थी।

"दरअसल 'यूनिवर्सिटी लाइफ' में हालैण्ड हॉल होस्टल के हम सात कर्मकाण्डी लड़कों ने एक साथ 'चुटिया-यज्ञ' किया था और कटी हुई चुटियाओं को होस्टल के बगीचे में एक पेड़ के नीचे सामूहिक रूप से दफ़ना दिया था ! ..इस अनुभव से तो, पंकज साहब, आप भी गुजरे ही होंगे कि 'स्टूडेण्ट लाइफ़' में हम लोग अक्सर 'एडवेन्चरस' हो जाते हैं ?"

मैं कहने को हो रहा था कि आप तो आज भी कुछ कम 'एडवेन्चरस' नहीं हैं। तभी ठाकुर साहब मुसकुराते हुए बोले, "आज, कुलदेवता की कृपा से बिगड़ी हुई स्थिति काफ़ी सँभल गयी-सी लग रही है, इसीलिए मैं ज़रा खुले हुए 'मूड' में हूँ। और दूसरे आपका काम तो साहित्य

लिखना है, इस जिले की राजनीति से आपका क्या वास्ता ? मैं इस 'इलेक्शन' में सिर्फ डेढ़ हजार वोटों से हार गया। असल में कांग्रेस वालों का एक चीज़ में कोई जवाब नहीं है। अल्पसंख्यकों की वोटें ये लेते हैं, जैसे जमादार बाजार में झाड़ू लगाता है !....आपने दोपहर को मेरी बग़ल में खड़े मौजूदा एम. एल. ए. पंडित यशोदानन्दन को देखा था ? कैसी हवाइयाँ उड़ रही थीं उसके चेहरे पर ? वह मौजूदा तनाव की स्थिति को 'इक्सप्लौइट'करने के लिये कुछ दाव चलने की सोच ही रहा होगा कि मैंने सारे मामले को 'पेंदा ऊपर, ढकना नीचे' करके रख दिया। आपका क्या विचार है ?

मैं अब भोजन समाप्त करके कुल्ले की तैयारी में था और इन तमाम फालतू बातों की जगह सिर्फ़ यह जानना चाहता था कि क्या उस हज्जाम ने वास्तव में उनकी चुटिया नहीं काटी ?

"मैं तो, आप जानते ही हैं, इस शहर में पहली बार आया हूँ।" कहते हुए मुझे डकार आ गयी। मैं रुक गया।

ठाकुर साहब भी मूँछें पोंछते हुए बोले, "आप अब और कुछ नहीं लेंगे ? चलिए, फिर उठा जाए। अब तो साहब, मुझे भी यही लग रहा है कि उस हीरो क़िस्म के लौंडे के साथ कुछ ज्यादती ही हो गयी। उस साले बेवक़ूफ़ से दरअसल मैंने, बाल बनवा लेने के बाद, कहा यह था कि 'भई, ज़रा पाँवों के नाखून काट देना।'.. और इसी बात पर वह सुरैया का भाई कह गया कि 'साहब, मैं पाँवों के नाखून नहीं काटता !' मैंने चवन्नी ज्यादा देने की बात भी कर दी, मगर वो साला, 'मैं पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ', कह कर साफ़ टाल गया। यकीन मानिए, जी में तो आया कि उसी समय तड़ाक् से एक तमाचा जड़ दूँ, मगर यह सोच कर रह गया कि जल्दबाजी ठीक नहीं होती। मगर साहब, फिर घर लौटते हुए, नहाते हुए और पूजा पर बैठते हुए—मैं लगातार अपने को बुरी तरह 'इन्सल्टेड' महसूस करता रहा कि अभी पिछले साल तक

साले इस शहर के तमाम हज्जाम 'हुज़ूर' कहते हुए, सड़क पर आ खड़े होते थे और कहाँ एक ही 'इलेक्शन' हार जाने पर यह नौबत आयी कि ससुरा बित्ते-भर का लौंडा मुँह पर तमाचा मार रहा है कि 'मैं पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ ?'.. अर्ज़ तो साले, तू अब कर रहा होगा ! तो यों कहिए कि आपके सामने-सामने ही 'ओम् विष्णवेनमः' कहते हुए, जो मैंने सिर पर हाथ फिराया, तो एकाएक वह 'आइडिया' सूझ गया !....बाक़ी तो सब-कुछ आप देखते ही रहे हैं ।"

मुझे एकाएक अपने सारे जिस्म पर ठंडी हवा रेंगती हुई-सी महसूस हुई । पहाड़ी जगहों में भोजन करने के बाद अक्सर जाड़ा महसूस होने लगता है, मगर मुझे इसकी वजह इस वक्त ठाकुर साहब की बातें लगीं ।

पान देते हुए, ठाकुर साहब फिर रहस्य-भरे अंदाज में बोले—"आपने उस लम्बी दाढ़ी वाले मौलवी को ज़रूर देखा होगा ? उस शख्स के हाथों में यहाँ के अल्पसंख्यकों की कम-से-कम साढ़े तीन हज़ार वोटें हैं ।"

सम्भव है, उन्हें अपनी बात की संदर्भहीनता का अहसास खुद ही हो गया हो । एकाएक उन्होंने बातचीत का सिलसिला बदल दिया । बोले, "पंकज साहब, अब भोजन के बाद आपका कोई मधुर गीत हो जाए ।"

भोजन के बाद काव्य-पाठ कर सकने में असमर्थता और इतने आत्मीयतापूर्ण आतिथ्य के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के बाद, मैं ठाकुर साहब के घर से बाहर चला आया । कुछ आराम कर लेने के इरादे से होटल की तरफ़ वापस लौटते हुए, मुझे यही लगा कि कि शायद, वह व्यक्ति अगले चुनावों में एम. एल. ए. की सीट जीतने का बंदोबस्त सचमुच कर चुका है ।

●

संतति-निरोध

●

चंद्रकांता-कॉलोनी की ओर जाने का कोई पूर्व-निश्चय आज सेठ करसन भाई के मस्तिष्क में नहीं था। न-जाने क्यों, एकाएक उनके मन में मजदूरों के बीच एक चक्कर लगा आने की बात उभर आई थी। उन्होंने चंद्रकांता कॉलोनी के मैनेजर बीरजीभाई को टेलीफ़ोन करना भी जरूरी नहीं समझा था। आज दिन-भर आराम करने के विचार से करसन भाई अपने सतमंजिले वसुधा-मैन्शन की आखिरी मंजिल के स्प्रिंगदार आरामझूले में लेटे हुए थे और कई फ़िल्मों में साइड-हीरोइन की भूमिका निबाहनेवाली नीलम जुरशी की हथेलियाँ उनके दोनों कंधों पर टिकी हुई थीं।

वसुधा सेठानी अहमदाबाद गई हुई थीं और वसुधा सेठानी घर में न हों, व्यवसाय की व्यस्तता से भी कुछ मुक्ति हो, तो सेठ जी अवश्य आरामझूले में होते हैं। अकसर गुजरे हुए वक्त की साइड-हीरोइन नीलम जुत्शी उनके पास होती है। अकसर उसकी मांसल हथेलियाँ करसनजी सेठ के कंधों पर टिकी हुई होती हैं। जब भी ऐसी स्थिति होती है, सेठ जी बहुत भावुक हो उठते हैं और उनके दिमाग़ में सट्टे के आँकड़ों की जगह शायरी आने लगती है। और जब भी सेठ जी के दिमाग़ में शायरी आने लगती है, साइड-हीरोइन नीलम जुत्शी के मन में हीरोइन बन पाने की उम्मीद पैदा हो जाती है। सेठ जी ने उसे हीरोइन का रोल देने के लिए एक प्रोड्यूसर-डाइरेक्टर को 'फाइनांस' देने का जो वादा कर रखा है, वह उन्हें सिर्फ़ ऐसे ही क्षणों में याद आता है....और वे अपने कंधों को धीरे-धीरे ऐसे उंचकाते हैं, जैसे कोई जानवर चोंच से पीठ खुजलाते हुए कौवे के लिए अपनी पीठ उचकाता है।

इस समय करसन भाई सेठ गोरेगाँव की ओर दौड़े जा रहे हैं। फॉस्ट लोकल-ट्रेन तेज़ रफ्तार से भाग रही है। सिर्फ़ बाँदरा, अँधेरी और मालाड के स्टेशनों पर रुकेगी। बाकी सारे लोकल स्टेशन छूट जाएँगे। मगर करसन भाई सेठ को फिर भी बेचैनी-सी हो रही है। उनकी आत्मा बार-बार ड्राइवर वाले डिब्बे में जाने और इस ट्रेन को चर्चगेट से सीधे बोरीवली के स्टेशन पर ही खड़ी करने का आदेश देने को उत्सुक हो रही है। लेकिन साथ बैठे अन्य यात्रियों की उपस्थिति उन्हें महसूस करा रही है, कि उनकी डॉज़ नहीं है, सरकार की लोकल ट्रेन है। और करसन जी भाई सेठ आवेश में अपनी हथेलियाँ रगड़ रहे हैं। और सेठ जी का मन हो रहा है, अपनी इन बेचैनी से थरथराती हुई हथेलियों को साइड-हीरोइन नीलम जुत्शी के कंधों पर रख दें और कहें, 'बाई, इस समय तो अपन मजबूर हूँ। मगर लौटते समय पूरी

लोकल-ट्रेन रिज़र्व करा लूँगा और बोरीवली से चलवाकर सीधे चर्चगेट ऊपर ही खड़ी करवाऊँगा !'

करसन भाई सेठ हमेशा अपनी आत्मा की आवाज़ सुनते रहे हैं। इन्हीं आवाज़ों को सुन-सुनकर, उन्होंने रबर के तस्मे में हाथ फँसाकर, सौदा करनेवाले मामूली ब्रोकर की स्थिति से ऊपर उठकर, बम्बई के गिने-चुने पूंजीपतियों में अपना स्थान बना लिया है। इस समय भी करसन जी सेठ को अपनी आत्मा कुछ बोलती हुई-सी लग रही है। कभी-कभी लगता है, इस छोर पर वो खुद खड़े हैं और उस छोर पर उनकी आत्मा खड़ी है। वैसे ही, जैसे चर्चगेट में उनका चंद्रकांता मैन्शन की आलीशान बीसमंजिला बिल्डिंग खड़ी है और बोरीवली में 'वसुधा स्पिनिंग एण्ड वीविंग मिल्स' की गगनचुम्बी चिमनी और उसके साथ लगी वसुधा कॉलोनी, जहाँ मजदूर रहते हैं। और अब इस वक्त वसुधा कॉलोनी में पहुँची हुई अपनी आत्मा की आवाज़ से करसन भाई सेठ को सबसे बड़ी आशंका यह हो रही है, कहीं मजदूरों ने आम हड़ताल करने का फैसला तो नहीं कर लिया !

बोनस के लिए तो मजदूर हमेशा चिल्लाते ही रहते हैं। उसके अब करसन भाई आदी हो गए हैं। मगर आज न-जाने क्यों अचानक ऐसा डर हो आया है। कुछ ही देर पहले करसन भाई अपने कंधे उचका-उचकाकर, साइड-हीरोइन नीलम जुत्शी की मांसल हथेलियों को ऊपर उछालते हुए, कह रहे थे—"सच्ची, बाई ! मेरे को ऐसा लग रहा है, जैसे मेरे कंधों के ऊपर तुम्हारी हथेलियाँ नहीं हैं, बल्कि कश्मीरी सेब रखे हुए हैं। केम ? अपन नक्की बात बोलता हूँ, खुदा ने तुमेरे को अक्खी दुनिया से ज्यास्ती हुश्न दे रखा है। जब कभी अपन तुमेरे कंधों के ऊपर अपने हाथ रखता हूँ, तो वहाँ भी कश्मीरी सेब के माफिक हुश्न काँपता

हुआ दिखाई देता है !...और अपन कहने को होता हूँ कि 'बाई, तुमेरे को तो अपने कंधों के ऊपर भी छत्तीस-इंची ब्रेसरी पहननी चाहिए।'... केम ?"

और साइड-हीरोइन नीलम जुत्शी सोच रही थी, 'आज सेठ जी के दिल की गहराइयों से शायरों की जैसी बातें ऊपर आ रही हैं। अब हीरोइन बनने का मुहूर्त्त, ज्यादा दूर नहीं है।'

उसने 'लारा-लप्पा लाई ला' गुनगुनाते हुए, अपनी हथेलियों से सेठ के कंधों पर ताल देना शुरू कर दिया था—"मगर, सेठ जी, 'कश्मीर की नागिन' फ़िल्म का प्रोड्यूसर तो मुझे उसमें साइड-हीरोइन का भी रोल देने का तैयार नहीं हो रहा है !"

"ऐम ?" करसन भाई सेठ ने अपने कंधे एकबारगी उचका दिए थे "मगर तुम फिकर काहे को करती हो, बाई ? अपन डाइरेक्टर पूनावाला से कह दूँगा, वह तुमेरे को हीरोइन बना कर, 'कश्मीर की सेव' फ़िल्म बना डाले ! तब सिनेमा देखनेवाले लोगन को भी पता चलेगा, कश्मीर की नागिन क्या होती है, और कश्मीर का सेव क्या होता है। केम ?"

खुशी के अतिरेक में नीलम जुत्शी कह बैठी थी—"फ़क़त इसी उम्मीद पर तो पिछले तीन साल से आपकी 'साइड-वाइफ़' का रोल करती चली आ रही हूँ, सेठ जी ! अच्छा, आज का वादा पक्का रहा ना ?.... ऊँहूँ, पक्का रहा ना ? अब तो जब तक आप मुझे हीरोइन नहीं बना देंगे, तब तक मैं आपसे बोलने की भी 'स्ट्राइक' कर दूँगी !"

साइड-हीरोइन नीलम जुत्शी को आशा थी, इस मीठी अदा पर रीझकर, सेठ जी कंधों पर उछलती उसकी हथेलियों को अपने हाथों में ले लेंगे। 'पक्का वादा ! जरिल्ला कापूस के सौदे के माफिक पक्का सौदा !' मगर 'स्ट्राइक' शब्द सुनते ही, करसन भाई सेठ की आत्मा

सीधे वसुधा-कॉलोनी तक पहुँच गई। साइड-हीरोइन से हीरोइन बनने के लिए जब नीलम जुरशी 'स्ट्राइक' कर सकती है, तो मजदूर क्यों नहीं कर सकते ? और आत्मा के इस आकस्मिक-संकेत से उनके कंधे सिकुड़-कर रह गए और उन्हें ऐसा महसूस हुआ, उनके कंधों पर रखे हुए कश्मीरी सेव नीचे फ़र्श पर लुढ़क गए हैं। एकदम फुर्ती से उठकर अपना लम्बा [illegible] कोट पहनते हुए, उन्होंने कहा था—"माफ करजो बाई ! अपन काम से बाहर जा रहा हूँ। तुम डाइरेक्टर पूनावाला के पास चली जाओ। अपन उसको फोन करके समझा दूँगा, अगर 'कश्मीर का सेव' फ़िल्म बनाने में देर लगती होवे, तो वह 'कश्मीर की नागिन' में तुमेरे को एकाध डांस जरूर दिलवा देवे। केम ?"

उत्तर की प्रतीक्षा किये बिना ही, करसन भाई चले आए थे। ड्राइवर को छुट्टी दे रखी थी उन्होंने तीन घंटों की, सो सीधे रेलवे-स्टेशन चले आए थे।

इस समय डबल-फ़ॉस्ट ट्रेन तेजी से दौड़ रही है। करसन भाई सेठ को एकदम पसीना हो आया है। उन्हें महसूस हो रहा है, वो खुद चर्चगेट से यहाँ तक पैदल दौड़ते चले आ रहे हैं। तेज़ी से दौड़ने के कारण ही साइड-हीरोइन नीलम जुरशी की गद्दीदार हथेलियाँ फिसलकर फ़र्श पर गिर गई हैं और मजदूर-यूनियन के नेता कामरेड मोंघले के खुरदुरे हाथों का दबाव कंधों पर महसूस हो रहा है—'सेठ जी, पगार और बोनस अगर बढ़ाने का फैसला आपने न किया, तो हम लोगों को मजबूर होकर हड़ताल करनी पड़ेगी ! और इस बार की हड़ताल फैसला-कुन हड़ताल होगी। सर्वहारा की ताकत से अभी आप शायद, बेखबर हैं....?'

कामरेड मोंघले की शब्दावली करसन भाई सेठ को शेयर बाजार की सांकेतिक व्यापारिक शब्दावली से भी कठिन लगती है। कठिन और अजनबी।

चलती 'ट्रेन' में अपने भीतर-ही भीतर पैदल दौड़ते हुए-से करसन भाई सेठ हिसाब लगाते जा रहे हैं। एक-एक दिन की हड़ताल से होनेवाले हजारों के नुक़सान का अंदाजा पहले महीनों में और फिर वर्षों में कहाँ जा पहुँचेगा। डबल फ़ॉस्ट ट्रेन हरेक स्टेशन पर रुकती हुई-सी लगती है, मगर कंधे दूनी रफ्तार से ऊपर को उछलते हुए महसूस होते हैं। और बार-बार अनायास ही करसन भाई सेठ को साइड-हीरोइन नीलम जुत्शी की याद आने लगती है।...

स्टेशन से टैक्सी करके मिल तक, और फिर मिल का अहाता पार करके वसुधा-कालोनी तक, करसन भाई पहुँचे ही थे कि उन्हें ढेर सारे मजदूर मर्द-औरतों की भीड़ दूर से ही नज़र आई। क्षण-भर को करसन भाई किंकर्तव्य-विमूढ़-से खड़े रह गए। उन्हें लगा, मजदूर हड़ताल का फ़ैसला कर चुके हैं। उनके दोनों कंधे भारी हो आए, जैसे मजदूरों का फ़ैसला उन पर बोझ की तरह आ लदा हो। अब उनके पाँव भी भारी हो गए थे। उन्हें लग रहा था, आगत भविष्य का संकेत देनेवाली आत्मा अब फिर सांझ के पंछी की तरह उनके ही अंदर लौट आई है। उन्होंने अपने अस्तित्व को इस समय ठीक वैसा ही भारी महसूस किया, जैसा वसुधा सेठानी के लौट आने पर 'वसुधा-मैन्शन' लगने लगता है।

कॉलोनी के मैनेजर भाई भोगीलाल ने करसन भाई सेठ को यों अप्रत्याशित रूप से, बिना किसी पूर्व-सूचना के, आया हुआ देखा, तो पहले हड़बड़ा गए, मगर फिर खुशखबरी सुनाने को आगे बढ़ आए। करसन भाई सेठ के पास पहुँचते-पहुँचते ही उन्होंने बताया, मजदूरों ने हड़ताल करने का इरादा छोड़ दिया है!

"पीछूं इतने मर्द-औरत लोगन की भीड़ काहे को लगी हुई है?" करसन भाई सेठ ने तेजी से सवाल किया। जैसे मजदूरों की हड़ताल न करने के फैसले ने उन्हें तेज धारा में बहा दिया हो।

भाई भोगीलाल ने बताया, 'फेमिली-प्लानिंग' वाले लो आये हुए हैं और मज़दूरों को 'नसबंदी ऑपरेशन' करा लेने के लिए राजी कर रहे है, इसीलिए ढेर सारे लोग एकत्र हो गए हैं।

अब करसन जी भाई ने संतोष की साँस ली, और उन्हें लगा, उनकी आत्मा उन्हें हड़ताल स्थागित होने की खुशखबरी सुनने के लिए ही यहाँ तक खींच लाई थी। उन्होंने धोती के छोर से अपना माथा पोंछ डाला, और बोले—"मगर भोगी भाई, मेरे को फोन पर बताया क्यों नहीं अभी तक ?"

"फोन किया था, सेठ जी ! मगर उधर से कोई औरत बोली थी, इस समय सेठ जी 'बिजनेस' की बातें करने के मूड में नहीं हैं, और उसने 'फोन' काट दिया था।"

सेठ समझ गए, यह हरकत साइड-हीरोइन नीलम जुरशी की ही है। उनका कहने को मन हुआ. 'अरे, भोगीभाई, वह औरतजात क्या जाने, करसन भाई की जिंदगी में तो 'मूड' होने या न होने का सवाल सिर्फ़ मुहब्बत के मामलों में ही हो सकता है, व्यापारिक मसलों में नहीं। बिजनिस' का 'मूड' तो मेरे दिमाग में चौबीसों घण्टे ठीक वैसे ही रहना है, जैसे दिल में धड़कन होती है।''''' मगर कुछ कह नहीं पाए। भोगी भाई रिश्ते में वसुधा सेठानी के भाई लगते हैं।

हड़ताल स्थगित होने की खुशखबरी सुनने के बाद, अब सेठ जी वापस लौट जाना चाहते थे, क्योंकि वसुधा सेठानी कल ही लौटने वाली हैं। मगर तभी फिर उन्हें आत्मा कुछ बोलती हुई-सी लगी।

तेजी के साथ करसन भाई सेठ भीड़ की तरफ बढ़ गए। उन्होंने सुना फेमिली-प्लानिंग के बारे में बोलने वाला व्यक्ति कह रहा था—"जितने ज्यादा बच्चे आप लोगों के होंगे, उतनी ही और दरिद्रता आप

लोगों के परिवार में आयेगी। जैसा कि आप लोगों से ही मुझे मालूम हुआ है, आप लोगों में से बहुतों के दस-दस, बारह-बारह बच्चे हैं। और आप लोगों के ही शब्दों में, ऐसे लोगों के परिवारों की हालत सूअरों के झुण्डों की-जैसी हो चुकी है।...जरा सोचिये, एक बच्चे का परवरिश में कितना खर्च होता है ? इस हिसाब से बारह बच्चोंवाले मजदूर के अगर सिर्फ़ तीन बच्चे होते, तो नौ बच्चों का परवरिश में लगने वाला रुपया पोस्ट-ऑफ़िस में जमा होता और नौ बच्चों का दवा-दारू में खर्च होने वाले रुपयों के सेविंग्स-सर्टिफ़िकेट खरीदे गए होते ! इसके अलावा उन सारी मुसीबतों से छुटकारा मिल जाता, जो बच्चों को सँभालने में सामने आती हैं। यही नहीं, तब तीनों बच्चों की परवरिश अच्छे ढंग से होती और उन्हें कालेज और यूनिवर्सिटी में पढ़कर, बड़ा अफ़सर बनने का मौका मिलता। इतना ही नहीं, सिर्फ़ एक-दो या ज्यादा-से-ज्यादा तीन-तीन ही बच्चे आप सब लोगों के होते, तो..."

करसन भाई सेठ को लगा, यह आदमी तो कामरेड भोंसले से भी ज्यादा खतरनाक है ! उन्होंने अपनी सम्पूर्ण आत्म-चेतना के साथ इस संदर्भ में सोचा और वापस मुड़ कर भोगी भाई को आदेश दिया—"भोगी भाई, फेमिली-प्लॉनिंग के वास्ते आये हुए दोनों बाबू लोग को हमेरे पास बुला के लाओ—एकदम तावड़तोब। जल्दी से !"

आदेश देकर, करसन भाई सेठ भोगीभाई के कार्यालय में चले आए। यहाँ एक छोटा-सा, आरामदेह कमरा उन्होंने अपने लिए बनवा रखा है। उस कमरे में पहुँचकर, करसन भाई सेठ दोनों 'बाबुओं' की प्रतीक्षा करने लगे। कुर्सी को एक चक्कर घुमाते हुए, उन्होंने महसूस किया, अगर इन बाबुओं की खोपड़ियों को भी इसी तरह दूसरी ओर नहीं घुमा दिया गया, तो अनर्थ हो जाएगा। उन्होंने अपने लम्बे कोट की जेब में से सौ-सौ के दो नोट निकाल लिए।

दोनों बाबू अंदर आकर सामने कुर्सियों पर बैठे ही थे कि करसन भाई ने एक-एक नोट दोनों के हाथों में थमा दिया। नोट देखते ही, दोनों बाबू जैसे सकपका उठे, उससे करसन भाई सेठ को लगा, उन्होंने बाबू लोगों की हथेलियों पर सौ-सौ के नोट नहीं रखे हैं, बल्कि उनके कंधों पर एक-एक खजूर का पेड़ रख दिया है।

करसनभाई सेठ प्रेमपूर्वक मुस्कुराते हुए बोले—"बाबू लोग, इसमें चौंकने की कोई बात नहीं है। कोई फोकट में या घूस में ये रुपये आप लोगन को नहीं दे रहा हूँ। मेरे को अपना 'ऑपरेशन' करवाने का है।"

"काहे का ऑपरेशन सेठ जी ?" दोनों बाबुओं ने एकदम चकित होकर, एक साथ प्रश्न किया—'हम लोग तो सिर्फ़ 'नसबंदी' का आपरेशन 'कर वाते हैं ?"

"अरे, वही तो। और काहे का, बाबू लोग ? अपने को फेमिली-प्लानिंग के वास्ते ऐसा ऑपरेशन कराने का है, जिससे फिर संतान नहीं होवे।"—करसन भाई सेठ बोले।

दोनों बाबू और भी ज्यादा विस्मित हुए। नोट अभी उनकी मुठ्ठियों में दबे थे। ज्यों-त्यों एक बाबू ने पूछा—"आपके कितने बच्चे हैं, सेठ जी ?"

"पूरे दो बेटे हैं ! एक बेटी भी थी, मगर उसकी शादी कर दी है !"—करसन भाई सेठ बोले।

सेठ जी के शांत स्वभाव को देखकर, दोनों बाबुओं की हड़बड़ाहट दूर हो गई। इस बार एक ने अपेक्षाकृत स्थिर आवाज में पूछ लिया—"गुस्ताखी माफ़ करें, सेठ जी ! अगर एतराज न हो, तो यह बताने की कृपा करें, आपकी माली हालत कैसी है ?"

"अरे, अपन तो माली हालत इन्कम-टैक्स वाले बाबू लोगन को बताने से भी इन्कार नहीं करता हूँ, बाबू लोग ! केम ? आप लोगन को असली माली हालत बताऊँगा । इस समय अंदाजन दो करोड़, अस्सी लाख की पूंजी मेरे पास है । आगे की लक्ष्मीमाता जानें !"

"दो करोड़, अस्सी लाख !" बाबू लोग लगभग चीखते-से बोले । फिर अपनी आवाज़ को उन्होंने कोशिश करके दबा दिया—"तो आपरेशन कराने की जरूरत क्या है, सेठ जी ? आपके तो सिर्फ़ दो ही बेटे हैं ? अगर ईश्वर की कृपा से दो दर्जन भी और हो जाएँ, तो भी कोई हर्ज नहीं । ऑपरेशन तो आपके उन ग़रीब मज़दूरों को कराना चाहिए, जिनके पास पूंजी के नाम पर दो रुपये, अस्सी पैसे भी मुश्किल से ही बच पाते हैं और उन्होंने बच्चे पैदा कर रखे हैं दस-दस, बारह-बारह !"

करसन भाई सेठ ने अंदाजा लगाया, इन दोनों बाबुओं को वेतन के रूप में दो सौ, अस्सी रुपये से बहुत ज्यादा, शायद, नहीं ही मिलते होंगे । उन्होंने सौ-सौ के चार नोट और निकाले, और दो-दो दोनों बाबुओं की हथेलियों में चिपका दिए ।

इस बार दोनों बाबुओं की आँखें और भी नीचे बैठ गईं । करसन भाई हँस पड़े—"ये रुपये इस बात के लिए हैं, बाबू लोग कि आप लोग इन मज़दूर लोगन का ऑपरेशन न करें । और अगर करें भी, तो इस तरह के ऑपरेशन कर दें, जिससे हर मज़दूर की औरत दो-दो, तीन-तीन बच्चे एक साथ पैदा करे !"

"मगर ऐसा हो जाए, तो इससे आपको भला क्या फ़ायदा होगा, सेठ जी ? इससे मज़दूर बेचारों की जिंदगी और भी नरक बन जाएगी ।" दोनों बाबुओं की आँखें आश्चर्य से थोड़ी-थोड़ी ऊपर उठ आईं ।

करसन भाई सेठ ने इस बार उनके धँसे हुए कंधों को भी थोड़ा-थोड़ा ऊपर उठता हुआ महसूस किया, साइड-हीरोइन नीलम कुरशी के कंधों की तरह। आर उन्होंने अपने हाथों को आगे की ओर फैलाकर, दोनों बाबुओं के कंधे थपथपा दिए—"अच्छा सुनो, बाबू लोग, बिजनिस दिमाग से जरूर करता हूँ, मगर बातें हमेशा दिल से करता हूँ। आप लोग तो अपने लिए घर का सरीखा लोग है। केम? आपसे कोई बात छिपाने का नहीं। मजदूरों के बच्चों की बात पहले करता हूँ पीछू अपने बच्चों का बात करूँगा।...अभी आप लोगन का लेक्चर भी अपन ने सुना था। आप लोगन की जानकारी के वास्ते अपन बताता हूँ कि रामदास मजदूर के सिर्फ़ दो ही लड़के हैं और भीखम के सिर्फ़ एक दर्जन।....मगर रामदास का कोई लड़का कॉलेज या यूनिवर्सिटी में नहीं गया। दस्तखत करना भी उनमें से किसी को नहीं आता और दोनों हमारे गोदाम में चौकीदारी कर रहे हैं।...और भीखम के बारह बच्चों में से तीन बच्चे म्यूनिसिपल प्राइमरी स्कूल में पढ़ते हैं, और अपने बाप का नाम भी साफ़-साफ़ लिख लेते हैं।....इसके अलावा रामदास ने पिछले ही महीने अपनी पूरी जिंदगी में जमा किये हुए बीस रुपये के सेविंग-सर्टिफिकेट चौदा रुपये में इसी भीखम के हाथ बेचे हैं।....यानी अपन यह बताना चाहता हूँ, आप लोगन को कि मजदूर लोगन के सिर्फ़ एक-एक दो-दो बच्चे होवें या एक-एक दो-दो दर्जन, कोई खास फ़र्क नहीं पड़ता है।...मगर हमेरे को बहुत फ़र्क पड़ता है। सिर्फ़ हमेरे को ही नहीं, पूरे हिंदुस्तान को बहुत फ़र्क पड़ता है।"

"पूरे हिंदुस्तान को ?" बाबुओं की प्रश्नवती आँखें और भी ऊपर उठ आईं।

"हाँ, हाँ, बाबू लोग ! अक्खा हिंदुस्तान मुल्क को फ़र्क पड़ता है। केम ?" करसन भाई सेठ एकदम दृढ़ स्वर में बोले—"बोलो कैसे ?

अपन समझाता हूँ। हमेरे सेठ लोगन के बेटे तो हाथ-पाँवों से मेहनत का काम नहीं कर सकते, सिर्फ़ दिल से बिजनिस और ज्यादा-से-ज्यादा दिमाग से मुहब्बत करने का काम कर सकते हैं। और अगर सारे मुल्क में सिर्फ़ दिमाग-ही-दिमाग और दिल-ही-दिल से काम करने वाले लोगन की तादाद फैल जावे, तो अक्ले हिंदुस्तान की हालत क्या हो सकती है, आप लोग समझ ही सकते हैं। जर्मनी में अकेले हिटलर के दिमाग ने कैसे-कैसे काम किये, आप लोग जानते ही होंगे और इंगलैण्ड में अकेले प्रोफ्यूमो के दिल ने कैसे-कैसे क़हर ढाए, यह भी मालूम ही होगा? केम? और जब से चीन ने हमला किया, तब से तो हमारे हितुस्तान के सामने जरूरत 'संतति हराम है' का नारा लगाने की नहीं, बल्कि नेहरू जी के 'आराम-हराम है' के नारे को जिंदा रखने की है।... और अगर हमेरे सेठ लोगन के बच्चे ज्यादा हुए, तो 'काम हराम है' की नौबत ही आएगी! इसी वास्ते अपन बोलता हूँ, हरेक मजदूर मर्द का ऐसा ऑपरेशन करो आप लोग कि दरेक मजदूर औरत हर बार दो-दो, तीन-तीन बच्चे पैदा करे, ताकि हिंदुस्तान में काम ज्यादा होवे! ...केम?"

बोलते-बोलते करसन भाई सेठ का मन यह कहने को भी उतावला हो रहा था कि 'जहाँ तक हमेरे को फायदा पहुँचने का सवाल है, बाबू लोग, साफ़ बात यह है, अगर मजदूरों के कम बच्चे होंगे, तो उनके घरों में तंगहाली कम होगी और वो ज्यादा पगार, ज्यादा बोनस माँगेंगे। एक-एक मजदूर तीन-तीन मजदूरों के बरोबर पगार माँगेगा, और तीन-तीन मजदूर मिलकर एक-एक मजदूर के बरोबर काम करेंगे। हड़ताल, हड़ताल चीख-चीख कर, खुद ही चुप बैठ जाने वाले मजदूर चुपचाप हड़ताल पर बैठे हुए ही दिखाई देंगे और परिवार के भूखे मरने का अंदेशा न होने से, उनकी सेहत ठीक रहेगी और जल्दी उठेंगे नहीं। और ऐसी हालत में खुद हमेरे को जोर-जोर से चीखना पड़ेगा

'हड़ताल बंद' काम शुरू ! हड़ताल बंद, नेहरू जी की ज्जै ?' केम ?'.... मगर उन्होंने बिना कुछ और कहे ही दोनों बाबुओं के कंधों को फिर थपथपा दिया—"केम ?"

दोनों बाबू चुप ही रहे।

करसन भाई सेठ ही फिर बोले—"अब मैं अपने बच्चोंवाली बात भी साफ़ कर देता हूँ। अपने पास दो करोड़, अस्सी लाख की पूँजी है, सो अपन करोड़पति कहलाता हूँ।....मेरे पूरे दो बेटे हैं और दोनों के दिमाग़ में अरबपती बनने के ख्वाब हैं।....अरे, बाबू लोग, इसमें चौंकने की क्या बात है ? आँखों से ख्वाब सिर्फ़ दिलवाले आदमी यानी रामदास के जवान बेटे श्यामदास देखते हैं।....केम ? मगर बिजनिसवाले आदमी यानी मेरे दोनों बेटे हमेशा दिमाग़ से ख्वाब देखते हैं।....और उन्हें भी यह हकीकत अच्छी तरह पता है, कि अगर अपन के सिर्फ़ एक बेटा भी और हो गया, तो उन दोनों के ख्वाब टूट जायेंगे। यानी अरबपती बनने की बात तो दूर, दोनों बेटे सिर्फ़ लखपती रह जायेंगे। केम ? यानी तीन भाइयों में से हरेक के हिस्से में सिर्फ़ तिरानब्बे लाख, तैंतीस हजार तीन सौ तैंतीस रुपयों की पूंजी आएगी। केम ?"

करसन भाई सेठ की सार-गर्भित बातों से दोनों बाबुओं की ऊपर को उठती हुई आँखें यथा-स्थान बैठ चुकी थीं। खजूर के पेड़ रेगिस्तान में उगे हुए दिखाई देने लगे थे और उन पेड़ों के बोझ से लदी हुई उनकी आत्मायें करसन भाई सेठ की हथेलियों के नीचे आ चुकी थीं—ठीक वैसे ही, जैसे साइड-हीरोइन नीलम ज़ुरशी के कंधे दब जाया करते हैं। इस बार एकदम निश्चिंत होकर, करसन भाई सेठ ने अपने दोनों हाथ उन बाबुओं के कंधों पर से हटा लिए और एक गोलाकार चक्कर कुर्सी पर काटते हुए, वापसी के लिए उठ खड़े हुए।

मोहल्ले में लगी आग

●

ए. जी. आफ़िस वाले श्रीवास्तव बाबू की छत पर आग की लपटें दिखाई देते ही, उन सबके चेहरे अत्यन्त सन्नद्ध और तत्पर हो गये थे।

जिस मुद्रा को सामाजिकता की अनुभूति-जैसी संज्ञा दी जा सकती है, वह ऐसे अवसरों पर लोगों की आँखों और उनके चेहरों पर से होते हुए सारे मोहल्ले में — बल्कि कभी-कभी पूरे शहर और देश में—ऐसे फैल जाती है, जैसे अँधेरी रात में देर तक ग़ायब पड़ी बिजली एकाएक आ जाए।

रात जिस तरह से अँधेरी हो चुकी थी, मोहल्ले-भर में, उसे आवश्यक या अनावश्यक की जगह, आकस्मिक कहना ज्यादा युक्तिसंगत होगा। बिजली कितनी त्वरा में अदृश्य हो गयी थी, इसका अनुमान 'मण्डी गल्ला व्यापारी समिति' के मंत्री बिशम्भरदयाल जी के इस वाक्य

से लगाया जा सकता है कि 'रोटी का गस्सा, मुँह की जगह, नाक में दे बैठा !'

शायद, कुछ ज़ोर से कह बैठे थे। बरामदे के नीचे खड़ा बजरंगी सुनते ही हँस दिया था—'ये ससुर रोटी के गस्से से लेके बेटी के बोस्से तक, हर चीज़ ग़लत जगह दे बैठते हैं !'

बरामदे से नीचे झुक कर देखने पर बिशम्भरदयाल जी ने पाया कि हस्बमामूल रोज़ की ही तरह आज भी चार-पाँच लौंडे-लपाड़ियों को साथ लिये हुए, वह उनके नीचे वाली पान की दुकान पर खड़ा सिगरेट फूंक रहा है।

'साले उठाईगीरों की कमी हमारी बिरादरी में भी नहीं रही।' कहते हुए, यथास्थान लौटते हुए, सबसे पहले बिशम्भरदयाल जी ने ही हाँक लगायी थी—"अरे भई, जरा देखना—ए. जी. आफ़िस वाले श्रीवास्तव बाबू की छत पर आग-जैसी लगी हुई दिखती है....।"

अब तक उनके घर से चीखने-चिल्लाने की आवाज़ें भी आग की लपटों की तरह उठनी शुरू हो चुकी थीं। श्रीवास्तव बाबू की बूढ़ी माँ 'बचाइयो, बचाइयो' चीखती हुई, बदहवास-सी सारी छत पर गोलाकार चक्कर काट रही थीं।

बिशम्भरदयाल जी को आँखों के सामने और मन के भीतर, समान रूप से लपटें उठती हुई महसूस हो रही हैं। बजरंगी अभी भी नीचे पान की दुकान पर ही खड़ा होगा, इस बात का अहसास उन्हें श्रीवास्तव बाबू की छत पर लगी हुई आग के प्रति पूरी तरह से केन्द्रित नहीं होने दे रहा है।

दरअसल उनकी सबसे बड़ी लड़की जानकी की बात पहले इस बजरंगी के लिए ही चल रही थी, मगर झुंझनू वाले बगड़का परिवार से रिश्ता आ जाने से, उन्होंने इस तरफ़ से अपना हाथ पीछे खींच लिया।

बस, तबसे बजरंगी कोई मौका चूकता नहीं है। आमना-सामना होते ही, उसके चेहरे पर विकृति उछल आती है और वह कुछ इतने फूहड़ ढँग से पान थूकता या सिगरेट का धुआँ उड़ाता है कि बिशम्भरदयाल जी को मितली और घबराहट की सी अनुभूति होने लगती है।

जानकी की माँ, मोमबत्ती हाथ में लिये, उनके पास ही खड़ी थी। उनका मन हुआ अन्दर से टार्च मँगवा कर, नीचे गलियारे में तो उतर जाएँ, क्योंकि मोहल्ले के ज्यादातर लोग वहीं पर इकट्ठे होंगे।

पड़ोसियों के यहाँ आग लगी हो, तो अपने-अपने बारामदों-छतों पर खड़े होकर, तमाशबीनों की तरह हो-हल्ला मचा देना अपनी सामाजिक ज़िम्मेदारी से मुकरना है। यों भी सामाजिक ज़िम्मेदारियाँ बिना भीड़ में शामिल हुए निभायी नहीं जा सकतीं। सौ-डेढ़ सौ आदमी अगर नीचे इकट्ठे हो गये और उनमें से दस-पाँच भी हिम्मत करके श्रीवास्तव बाबू के घर की आग में हाथ देने पहुँच गये, तो आग बुझाने के नेक काम में हाथ बँटाने का श्रेय सभी को मिल जाएगा। बिशम्भरदयाल जी जानते हैं कि भीड़ में शामिल रहने की दोहरी सार्थकता होती है। कोई असामाजिक या क़ानून-विरोधी कार्य हो गया, तो न मालूम अब इस सैकड़ों-हज़ारों की भीड़ में से किसने किया ? कदाचित् वाहवाही या भलमनसाहत का कोई तुक्का बैठ गया, तो 'अपने भी वहीं होने' की प्रामाणिकता से गरिमामंडित होने की सुविधाएँ रहती हैं।

खासतौर पर बिशम्भरदयाल जी-जैसे मोहल्ले के सिरमौर लोगों को तो हर क्षण चौकन्ना ही रहना होता है, न-जाने कब मोहल्ले के समाज में कहाँ, किस कोने से, क्या ऊँच-नीच हो जाए ? करने वाले तो,करके फारिग हो जाएँगे, नेकी-बदी इन्हीं चार सयानों के माथे पड़ती है कि 'आप-जैसे ज़िम्मेदार लोगों होते हुए !'—नहीं, अपनी भयग्रस्तता

के बावजूद उन्हें नीचे उतरना ही होगा। बाढ़ की चपेट में आये पेड़ और आग की लपटों में आये हुए घर का कोई भरोसा नहीं, कब ढह पड़े और किधर।

विशम्भर दयाल जी तेजी से नीचे उतरना चाहते थे, लेकिन बजरंगी की उपस्थिति के विभ्रम में, नीचे उतरने को झुकता हुआ उनका भीमकाय शरीर फिर बारामदे की रेलिंग से टिक कर रह गया—'कौन-जाने सुसरा अँधेरे में कहीं छुरा-वुरा ही घोंप दे?' यह पूरा वाक्य उनके रोम-रोम में मुड़िया लिपि की तरह फैल गया।

विशम्भरदयाल जी को यों अंतर्द्वन्द्व में उलझे-उलझे सिर्फ़ कुछ ही क्षण तो बीते होंगे, मगर इतने में ही लगभग पूरा मोहल्ला अस्तित्व में आ चुका था। घुप्प अँधेरे में डूबे हुए गलियारे एकाएक मद्धिम रोशनी से भर गये थे। घरों के भीतर, जिसके यहाँ जो जल रहा था—दीया, ढिबरी, लालटेन या मोमबत्ती—लगभग बिजली की-सी ही तेजी से बारामदों और छतों पर पहुँच चुका था। एक सर्वव्यापी तत्परता सैकड़ों चेहरों पर एक साथ फैल गयी थी।

पिछले पखवाड़े जब अलीगढ़ वाले गोयलों की बहू आत्मदाह करके मर गयी थी, तब भी यों ही सारा मोहल्ला एक विशाल चेहरे में बदल गया था। ऐसे सामाजिक अवसरों पर लोगों की सारी संवेदना और तत्परता चेहरे पर खिंच आती है, जैसे इस वक़्त सारे मोहल्ले की ढिब-रियाँ और मोमबत्तियाँ बारामदों और छतों पर आ चुकी हैं। किसी भी मोहल्ले का नक्शा बनाने या मर्दुमशुमारी का सबसे उपयुक्त वक़्त वही हो सकता है, जब वहाँ इस तरह की सामाजिकता की बिजली कौंध रही हो।

रेलिंग के सहारे लगे हुए विशम्भरदयाल जी को लोगों के चिल्लाने और इधर-उधर आने-जाने का शोर लगातार असुविधा में डाल रहा था

ऐसे अवसरों पर सयानों के चेहरे पहले तलाशे जाते हैं कि 'फलाँ थे तो घर में ही, मगर बाहर नहीं दिखे ? श्रीवास्तव बाबू से कहीं कुछ लगती-वगती तो नहीं ? संतोषी माता के मंदिर वाले मामले को ले कर तू-तू-मैं-मैं तो बड़े ज़ोरों की हो चुकी थी ?'

दाइयों से पेट भले ही छिप जाएँ, मगर सामाजिकता से लैस मोहल्ले वालों से इस तरह के नेकी-बदी के कामों को बचा ले जाना असम्भव है। ऐसे में (घर तो खैर तब तक जल कर बरबाद हो ही चुकेगा, क्योंकि दमकल वाले 'चक्रव्यूह' में घुस जाएँ, इस मोहल्ले की गलियों में घुसना उनके बूते का नहीं।) अगर दो-चार सहानुभूति की बातें श्रीवास्तव बाबू के कन्धे पर हाथ रख कर कह आएँगे, या हताश और गृहविनाश के वज्रपात से टूटे हुए श्रीवास्तव बाबू को ज़रा अपने बारामदे तक ला कर, दस लोगों के सामने-सामने यह कह देंगे कि 'विधाता के कोप को रोकना हम अकिंचन् मनुष्यों के वश में कभी नहीं रहा, श्रीवास्तव साहब ! देखिए, जब तक कहीं और बंदोबस्त नहीं हो जाता, बाल-बच्चों को जानकी की अम्मा जी के पास छोड़ दीजिए। यह घर भी आखिर आपका ही है।'—तो झख मार कर लोगों को यही कहना पड़ेगा कि 'बिशम्भर बाबू की दयानतदारी का लोहा तो मानना ही पड़ेगा।'

टार्च हाथ में लिये, असमंजस में बारामदे की रेलिंग से ही पीठ टिका कर खड़े रह गये बिशम्भरदयाल जी की तरफ़ देख कर, जानकी की माँ बोली—"अजी, नीचे उतर कर ही क्या कर लोगे ? जलती आग को अपना-पराया थोड़े ही सूझता है। सारे-के-सारे लोग बारामदों और छतों पर खड़े ही तो दिखाई दे रहे हैं। कोने का मजला है, जरा आग बैठ चुके, तो ही सारे मोहल्ले वाले भी पहुँचेंगे। तुम भी हो आना।"

एक क्षण को टार्च की रोशनी अपनी पत्नी के चेहरे पर डाल कर, उन्होंने अपना दायाँ पाँव नीचे को उतरने वाली सीढ़ियों की तरफ बढ़ा

दिया—"अरे भई, मोहल्ले की नेकी-बदी कोई औरतों के सुलटाने की चीज़ नहीं होती। मोहल्ले के आलतू-फ़ालतू लोगों को क्या है। उन्हें तो आग लगे, सिर्फ़ आग और पानी पड़े तो सिर्फ पानी दिखाई पड़ता है, मगर हमें तो अपना आगा-पीछा आग-पानी से पहले देखना होता है। आग तो लग के बुझ जाती है, पानी बरस के निकल जाता है, मगर सयानों के माथे की नेकी-बदी तो बेर की ज्यों फलती है।"

अपनी बात पूरी करके उन्होंने रेलिंग से नीचे झुक कर झाँका, तो गणेशी पान वाले की दुकान के दायरे में फैली हुई मद्धिम रोशनी में बजरंगी कहीं नहीं दिखाई दिया। नीचे उतरते हुए, अपनी पत्नी की ओर पलट कर, इतना कहते गये—"गद्दी पर से मुन्शी बाबू लोग लौटते ही होंगे। उन्हें खिला-पिला देना और रोकड़ ठीक से तिजोरी में रखवा देना। लौट के हिसाब-किताब देख लूंगा। और कल सुबह इस गणेशी पान वाले से कह देना कि अपना बस्ता कहीं दूसरी जगह बिछावे। स्साले सारे सफंगे-लपाड़ियों का जमावड़ा यहीं पर होता रहता है!"

सीढ़ियाँ उतरते हुए, अपनी ओर चिंतित मुद्रा में देखते हुए गणेशी पान वाले को उन्होंने अनदेखा कर दिया और सामने बावड़ी वाले चबूतरे की ओर बढ़ गये।

किसी छोटे लड़के के हाथ से पानी की छोटी-सी बाल्टी हाथों में लिये-लिये, नीचे वाली मंजिल की नौ-दस सीढ़ियाँ पार करके, जब बिशम्भरदयाल जी श्रीवास्तव बाबू की छत पर पहुँचे तो वहाँ की अग्निदाह की स्थिति देख कर, उनके मुँह से यही निकला—"वो जो कहा है साहब, कि 'जाको राखे साइयाँ, मार सके ना काय और बाल न बाँका करि सके, जग जो बैरी होय' तो महात्मा तुलसीदास जी ने झूठ नहीं कहा। श्रीवास्तव साहब, आपको माता जी का पुण्य फल गया है।"

'माता जी का पुण्य फल गया है' कहते हुए, उन्होंने श्रीवास्तव बाबू की अभी तक बदहवासी में लिपटी हुई-सी वृद्धा माँ की ओर ऐसे हाथ जोड़े, जैसे सन्तोषी माता के नवनिर्मित मन्दिर की ओर मुँह किये खड़े हों। उन्हें, इस वक़्त भी, यह बात अच्छी तरह स्मरण थी कि यह लोकापवाद श्रीवास्तव बाबू की जीभ की नोक पर से ही मोहल्ले में फैला था कि 'सार्वजनिक चंदे की राशि से निर्मित संतोषी माता के मंदिर में बैठने वाले पुजारी जी वास्तव में कर्मकाण्डी पण्डित नहीं, बल्कि बिशम्भरदयाल जी की कालपी वाली पेढ़ी के भूतपूर्व मुनीम जी हैं!'

बिशम्भरदयाल जी के प्रणाम से श्रीवास्तव बाबू की माता जी कुछ झेंप-सी गयीं और अपना पल्लू ठीक करती हुई बहू की तरफ़ बढ़ गयीं। अब कहीं जा कर उनका ध्यान इस ओर केन्द्रित हुआ कि देखें, यहाँ पहुँचे कितने लोग हैं, तो बजरंगी के चेहरे से टकरा कर उनकी आँखें घृणा से भर गयीं। उसका चेहरा किंचित् सिकुड़ा हुआ था और वह बार-बार अपनी हथेलियों को मुँह से फूंक रहा था। इतने में श्रीवास्तव बाबू की बेटी सुषमा, शायद, बरनॉल की ट्यूब ले आयी थी और बजरंगी लगभग उसकी ओट हो गया था।

"बस, भगवान् की कृपा यह हुई कि बड़ी बिटिया की साड़ी आग की लपेट में आयी ही थी कि बजरंगी बाबू ने हाथों से मसल कर बुझा डाली। नहीं तो वायल को आग में फुंकते देर कहाँ लगती है? सुषमा बेटे, जरा दोनों हाथों में ठीक से बरनॉल लगा देना।"—कहते हुए, श्रीवास्तव बाबू भी उस तरफ़ बढ़े, तो 'देखें, कितने जले हैं' की-सी मुद्रा में अड़ोस-पड़ौस के आये हुए भी उस तरफ़ बढ़ गये। सुषमा ने, शायद, नयी साड़ी बदल ली थी। नयी साड़ी का चटख रंग बिशम्भरदयाल जी को चुभता हुआ-सा लगा।

श्रीवास्तव बाबू वापस लौटते हुए, उनकी तरफ़ कृतज्ञतापूर्वक देखते हुए बोले—"बस, भगवान् ने ही बचा लिया, बिशम्भरदयाल जी ! घर में लगी आग सिर्फ़ कच्चे रसोई-घर को नुक़सान पहुँचा कर ही रह गयी । बजरंगी बाबू के हाथों में चार फफोले निकल आये हैं । मेरे ख़याल से कल तक बैठ जाएँगे । आपको भी यहाँ तक आने का कष्ट उठाना पड़ा ।"

इस बार उन्होंने वहाँ पर उपस्थित हो चुके मोहल्ले वालों के चेहरे टटोलने की कोशिश की । आग की इतनी ऊँची-ऊँची लपटों के बाद का यह सिर्फ़ रसोईघर के टट्टर को जला कर समाप्त हो जाने वाला अग्निकाण्ड, जैसे सभी को नितान्त अपर्याप्त और बच्चों का-सा खेल लग रहा था । अपने-अपने घरों से निकलते समय उन लोगों की आँखों और चेहरों पर जो सन्नद्धता और तत्परता बारामदे में ले आयी गयी मोमबत्तियों की रोशनी की तरह इकट्ठा हो आयी थी, वह अब जैसे एकाएक बुझ चुकी थी । एक अव्यक्त सन्नद्ध 'च्-च्-च् बेचारे श्रीवास्तव बाबू' की सामाजिक सहानुभूति से जीवंत होते हुए उनके होंठों पर अब एक भाषाहीनता पसर चुकी थी ।

"अरे, साहब इसमें कष्ट-वष्ट की बात क्या है । आपस में हमारे लाख झगड़े हों, मोहल्ले के दुःख-सुख में मोहल्ले का बच्चा-बच्चा एक है ।....मगर कुछ पता चला या नहीं, श्रीवास्तव साहब कि आग आखिर लग कैसे गयी ?" इस बार बिशम्भरदयाल जी ने यह प्रश्न पूछा, तो लोगों के सपाट हो चुके चेहरों पर कौतूहल की हलकी-सी रेखाएँ खिंच आयीं । श्रीवास्तव साहब की पत्नी के इस उत्तर से उन्हें सिर्फ़ हताशा ही हुई कि 'दियासलाई जलाते वक्त मुझे इस बात का ध्यान ही नहीं रहा था कि स्टोव के बाहर भी मिट्टी का तेल बिखर गया है । वो तो भगवान् की कृपा थी कि तेल भी, बस, थोड़ा-सा, खतम होता हुआ बाक़ी बच गया था ।'

"सब सन्तोषी माता जी की दया है ! अच्छा, श्रीवास्तव साहब, हम चलें । अबकी बार रसोईघर को पक्का करवा लीजिए । अब तो सीमेण्ट भी इफ़रात में मिल रहा है । कोई तीन सौ कट्टे तो कल के दिन में हमने ही सप्लाई किये होंगे ।" कहते हुए, एक चोर-नज़र बजरंगी की तरफ़ डाल कर, बिशम्भरदयाल जी सीढ़ियों की तरफ़ मुड़ गये, तो उन्हें सारा मोहल्ला अपने साथ-साथ सीढ़ियों पर से उतरता हुआ सा अनुभव हुआ ।

मोहल्ले में लगी हुई आग के इतने ठंडे ढंग से बुझ जाने और बजरंगी की वहाँ पर उपस्थिति से उनका सब कुछ इतना उलझ गया था कि बिजली आ चुकने की प्रतीति उन्हें बर्फ़ पान वाले को अपनी तरफ़ बढ़ते हुए देख कर हुई । वहाँ पर मोहल्ले के कई लोग बेंचों पर बैठे हुए थे । कई लोग उठ खड़े हुए और उन्होंने आग्रह किया, तो रुक गये ।

गल्ला मण्डी में काँजी-बड़े बेचने वाले पंडित जी आगे बढ़ते हुए बोले—"अरे साहब, यहाँ बैठिए । आप तो, शायद, श्रीवास्तव बाबू की छत पर से आ रहे हैं ? हम लोग भी पहुँचने वाले थे, मगर तभी पता चला कि होलिकादहन खतम भी हो गया ! लपटें तो यों दिख रही थीं हमारे घर से कि हम दहशत में थे—कहीं दो-चार दूसरों के घर भी स्वाहा न हो जाएँ । उनकी बग़ल में तो, शायद, प्रोफ़ेसर सिद्दीक़ी मियाँ रहते हैं । सुना है, वो अपने लाला सुन्दरलाल जी के बेटे बजरंगी को कुछ लपट लग गयी ? कितना जल गया..."

"अरे साहब, वह भी बम्बई-पलट है । कुछ सोच-समझ कर ही परायी आग में हाथ दिया होगा !—कहते-कहते, उनके चेहरे पर फिर घृणा फैल गयी—"हमें तो श्रीवास्तव बाबू की बड़ी बेटी, क्या नाम है उसका, अच्छी-खासी सयानी हो गयी दिखती है । खैर, इन

कायस्थों में बेटियों को आधी उमर तक पढ़ा-लिखा कर ब्याहने का रिवाज ही चलता है। अब आप लोग समझेंगे, मैं बिना प्रसंग की कह रहा हूँ, मगर हाल ही में हमने एक फ़िल्म देखी थी, नाम याद नहीं आ रहा। उसमें हीरो हिरोइन को आग में जलने से बचाते हुए खुद जल जाता है और वह अपनी आधी जली साड़ी फाड़कर उसके जख्मों पर मरहम-पट्टी करती हुई, यों समझिए, लगभग अधनंगी खड़ी रह जाती है। ये फ़िल्म वाले भी, साहब, हमारे समाज को भ्रष्ट करने पर तुले हुए हैं।"

"पिछले साल इन्हीं दिनों नया बाजार की नुक्कड़ वाली दूकानों में आग लग गयी थी। मेहरा स्टोर वालों से शुरू हो कर पन्ना सर्राफ़ के यहाँ पहुँचने पर क़ाबू में आयी। दो तो ठेलों में जुते हुए भैंसे मर गये थे! मेहरा स्टोर वालों के मुनीम की तो आँखें ही फूट गयीं। बारदाना वाले चोखेलाल के घुटनों तक पाँव जल गये थे! कोई पचास-साठ हजार का नुक़सान तो हुआ ही होगा!" काँजी-बड़े वाले पंडित जी ने बातचीत को फिर मोहल्ले में लगी हुई आग पर केन्द्रित करने की कोशिश की, तो उनकी आँखों में एक खालीपन-सा फैल गया—यहाँ तो कुछ भी नहीं हुआ।

"उसने भी दिखाने-भर को हाथ सेंक लिये हैं।"—विशम्भरदयाल जी अपना ध्यान बजरंगी पर से हटा नहीं पा रहे थे—मैं खुद अपनी आँखों से देखता आया हूँ। कोई दो-एक फफोले फूट आये होंगे, मगर श्रीवास्तव बाबू की बड़ी बिटिया ने सौ-पचास ग्राम से कम बरनॉल क्या पोती होगी!"

"संतोषी माता वाले मामले में तो ये लोग आपके बहुत विरुद्ध मालूम पड़ते थे?"—कांजी-बड़े वाले पंडित जी, शायद, भाँग की गोली चढ़ा चुके थे और नित्य की तरह बहस जमाने की मुद्रा में आ चुके थे।

"धर्म के काम में विघ्न-बाधाएँ लगी ही रहती हैं । हाथ भी उन्हीं के जलते हैं, जो होम करते हैं । जो ससुरे टट्टी जाने वाले लोटे के पानी में उँगलियाँ डाले बैठे रहते हैं, उनकी विपक्षता कोई क्या करेगा ?"— बिशम्भरदयाल जी अब पाँव पर पाँव चढ़ा कर बैठ गये थे—"क्यों पंडित जी, आपने वो अशर्फ़ियों वाली कहानी खुद ही तो सुनायी थी कि 'सयाने ने तो अपने घोड़े को चनों के साथ अशर्फ़ियाँ खिलायी थीं और शहंशाह के दरबार में उसने अशर्फ़ियाँ ही लीद दीं ?' इस मोहल्ले में तो ऐसे बग़ैर टके के बादशाहों की बस्ती है, जो लीद खिला कर अशर्फ़ियाँ हगवाने के ख्वाब देखते हैं !"

"अजी साहब, सिर्फ़ सपना ही नहीं देखते, लीद से अशर्फ़ियाँ ढालने वाले भी इस मोहल्ले में रहते हैं !"—पंडित जी ने अपनी सुलफे की चिलम तैयार करनी शुरू कर दी थी । गीली साफी को बिशम्भरदयाल जी की तरफ़ उठा कर, निचोड़ते हुए बोले—"एक सौ अट्ठाईस राशन कार्डों की शक्कर एक फ़र्श पर तुल गयी—पौने तीन के भाव !....और राम भली करें, पौने पाँच के दाम बिक गयी । राशन कार्डों की शक्कर बेचने वाले ख़रीद कर क्या ले गये, बेझड़ ?"

निचोड़ ली गयी साफी को ज़ोर से झिटक कर, काँजी-बड़े वाले पंडित ने गणेशी पान वाले की तरफ़ मुँह कर लिया और खोमचे की बग़ल में लटकती हुई जलती मूँज की रस्सी का सिरा चिलम पर रख, दम खींचने में जुट गये ।

बिशम्भरदयाल जी को लगा, मूँज की रस्सी का जलता हुआ सिरा पंडित ने उनके उघड़े हुए बायें घुटने पर चिपका दिया है । सर्राफ़े वाले दीनदयाल जी की तरफ़ मुँह करते हुए, बोले—"क्यों साहब, कंट्रोल की एक-अस्सी के भाव की चीनी पौने चार की ख़रीदी, तो नब्बे पैसे किलो

बढ़ती के दाम दिये ? और पौने पाँच की बेची भी, तो मुनाफ़ा कितना ले लिया, दस नया पैसा और बढ़ती ? मज़ाक़ देखिए कि नब्बे पैसे बढ़ती वाले तो लीद गये और दस पैसे बढ़ती वालों ने अशर्फ़ियाँ छान लीं ?"

काँजी-बड़े वाले पंडित ने अत्यन्त शातिर ढंग से मुसकुराते हुए उनकी तरफ़ देखा और आत्मगरिमा की मुद्रा में चिलम पीनी शुरू कर दी।

बिशम्भरदयाल जी को एकाएक यह खयाल आ गया कि काँजी-बड़े वाले पंडित ने आज तक यह रट लगानी नहीं छोड़ी है कि 'साहब, सिर्फ़ चौंतीस साल पुरानी बात है। इसी सेठ बिशम्भरदयाल को मेरी चाट की दुकान में पानी के बताशे भरते हुए देखने वाले बुजुर्ग लोग अब भी इसी मोहल्ले में मौजूद हैं।"

सेठ दीनानाथ बिलकुल बग़ल में बैठ चुके थे। उनके कंधे पर हाथ रखते हुए बिशम्भरदयाल जी ने फसाकड़ा मार कर बैठते में नंगे हो आये घुटने पर धोती डाल ली और बोले—"क्यों भाई दीना सेठ, इसी मोहल्ले में हम लोग जब गिल्ली-डण्डा खेलते थे, तब अच्छे-खासे लोगों को हमने भाड़ झोंकते देखा था। अब यह बासठ होने को आ गये, भड़भूजों से भाड़ नहीं छूटे, तो इसमें दूसरों का क्या दोष है ?"

काँजी-बड़े वाले पंडित का चेहरा एकाएक तमतमा गया और कुछ जली-कटी उनके मुँह से बिशम्भरदयाल जी के लिए निकलने ही वाली थी कि सामने से प्रोफ़ेसर सिद्दीकी आते हुए दिख गये। बड़े अदब से उन्होंने बिशम्भरदयाल जी को 'आदाबअर्ज' कहा और बोले —"दयाल साहब, भगवान् शंकर की मेहरबानी इसे कहते हैं। श्रीवास्तव साहब का घर जलते-जलते बच गया। बस, बेचारे जरा बजरंगी बाबू के हाथ जल गये....।"

प्रोफ़ेसर सिद्दीक़ी ने चरस चूँटते हुए पंडितजी की तरफ़ कोई ध्यान नहीं दिया और 'अच्छा, दयाल साहब, इस वक्त इजाज़त चाहता हूँ' कहते हुए, आगे बढ़ गये।

बिशम्भरदयाल जी के चेहरे पर गरिमाइकट्ठी होती हुई देख कर, पंडित जी को कुढ़न तो हुई, मगर अब उनका ध्यानपूरी तरह प्रोफ़ेसर सिद्दीक़ी पर केंद्रित हो चुका था—"क्यों दयाल साहब, साढ़े तीन-गज़ी सलाम झुकाने वाले प्रोफ़ेसर सिद्दीक़ी के मुँह से भगवान् शंकर की जै कैसी सुनाई पड़ती है? मगर पिछली बार नगर पालिका के चुनाव में जब तुम खड़े हुए थे, तब ये खुदा और मक्के-मदीने के नाम पर वोट डलवा रहे थे! राम भली करें, साँप को दोहरी जीभ देने वाले ने भी कुछ सोच-समझ कर ही दी होगी!"

अब बिशम्भरदयाल जी का स्वर भी कुछ नम्र हो गया—"अरे पंडित जी, इनको श्रीवास्तव बाबू के घर की नहीं, अपने घर तक आग की लपट न पहुँचने की ख़ुशी हो रही होगी।"

पंडित अब उनके थोड़ा-सा और पास सरक आये—"क्यों, दयाल साहब, कहीं फिरोजाबाद और बनारस वाली यहाँ भी तो नहीं शुरू हो गयी?"

"मैं कुछ समझा नहीं। आप तो पंडित जी, पेशे से दहीबड़े-काँजी-बड़े भले ही बेचते रहे हैं, मगर मोहल्ले की 'पॉलीटिक्स' में तो आपने बड़ों-बड़ों को धूल चटायी है। अलीगढ़ वाले गोयलों की बहू ने जब आत्महत्या कर ली थी और लाश का पंचनामा हो चुका था, तब ऐन श्मशान के किनारे से लाश चीरघर के लिए वापस आपकी ही कोशिशों से लायी गयी थी। होना-हवाना तो खैर, कुछ था नहीं, मगर मोहल्ले

वालों को कम से कम इस बात का अहसास तो हो गया कि ऊँच-नीच पर मिट्टी डाल देना इतना आसान नहीं है। उन दिनों यही प्रोफेसर सिद्दीक़ी यों कहते सुने गये थे कि 'साहब, जहाँ होने चाहिए थे, वहाँ तो नदारद हैं और जहाँ नहीं होने चाहिए, वहाँ सात फीट गहरी क़ब्र में से हड्डियाँ ले आने वाले मौजूद हैं! परोफेसर है। बातों की खाने वाला आदमी है, ज़बान भी बहुत शातिर पायी है।"

"यह यहाँ नहीं, वहाँ नहीं वाली मिसाल तो कुछ पल्ले पड़ी नहीं, दयाल बाबू! जरा खुलासे में बताइए कि सिद्दीक़ी ससुरा किसके बारे में बातें कर रहा था?"

"जासूसी कुत्तों के बारे में!"—कहते हुए, बिशम्भरदयाल जी ने अपनी आँखें पंडित के चेहरे पर गड़ा दीं, तो चरस से चढ़ती हुई-सी उनके चेहरे पर की त्वचा एकाएक नीचे को उतरती दिखाई दी। एक गहरे संतोष को अपने नथुनों में भरते हुए, बिशम्भरदयाल जी ने अपना आगे को थोड़ा-सा झुका हुआ सिर पीछे कर लिया। उन्हें काफी पहले से ही यह बात मालूम है कि अहंकारी व्यक्तियों को थोड़ा-सा भी मर्माहत कर दिया जाए, तो वे सर्पभुट्टे के पौधे की तरह हिलने लगते हैं।

श्रीवास्तव बाबू के घर लगी हुई आग बुझाने को एकत्र हो आया मोहल्ला अब बिखर गया है। लोग इक्के-दुक्के लौटते जा रहे हैं। इस मोहल्ले की बनावट भी कुछ ऐसी है कि अगर तेज हवा या आँधी चले, नीम की पत्तियाँ और धूल के ग़ुबार बड़ी देर तक गलियारों में मक्खियों की तरह नीमऊँचाई पर भिनभिनाते रहते हैं।

पूरा मोहल्ला जब एकत्र हो जाता है, तो फिर उसे अपने-आप में लौटते समय लगता है।

'आग लग गयी है' के सामाजिक तनाव में से व्यक्तिगत रूप से बिखरते हुए सभी के चेहरों पर लगभग एक-सा फुसफुसापन तैर रहा होगा--बिशम्भरदयाल जी लगातार यही महसूस कर रहे थे और पण्डित की उपस्थिति में से नितांत व्यक्तिगत थुक्काफ़ज़ीहत का अस्तित्व में आना उन्हें ऐसी निश्चितता नहीं दे पा रहा था कि चुपके से उठें और घर जा कर, अपना अधूरा छूटा हुआ भोजन पूरा कर लें। उनका यह अपना अनुभव है, जो लोग समाज, धर्म और देश के मामलों से जुड़े रहते हैं, सामान्य व्यक्तियों की तरह अपने तने हुए चेहरों से मुक्ति पाना उनके लिए कठिन हो जाता है।

एकाएक उन्हें काँजी-बड़े वाले पण्डित की लम्बी मूँछें अपने चेहरे तक आती हुई-सी दिखाई दीं--"मेरी फिरोज़ाबाद और बनारस वाली शुरू हो जाने का मतलब तुम समझे नहीं, दयाल बाबू ? अखबार तो 'मोहल्ला कल्याण समिति' की लायब्रेरी के सबसे पहले तुम्हारी ही गद्दी पर पहुँचते हैं ?"

बिशम्भरदयाल थोड़ा-सा आहत हो गये थे और कुछ तीखा उत्तर देने की कोशिश करना ही चाहते थे कि पण्डित का चेहरा नीचे को झुकता हुआ उनके बायें कन्धे पर आ गया--"मेरा मतलब है, श्रीवास्तव बाबू के घर आग लगी नहीं, लगायी गयी थी। समझे ? बनारस और फिरोज़ाबाद में..."

"ये क्या उड़ा रहे हो पण्डित ? अरे, इस तरफ तो मेरी आँख ही नहीं गयी थी ! मगर श्रीवास्तव की घरवाली तो खुद यही कह रही थी कि स्टोव पर उसी से तेल ज़्यादा फैल गया था और..."

"जिसको विधाता लक्ष्मी देता है, उसे सरस्वती कभी पूरी नहीं देता, बिशम्भरदयाल ! अरे भई, कौन-सी बात खुद कही गयी है या

उसे कहलवाया गया है; इसका कोई सबूत ढूँढ़ा जा सकता है ? अपने घर के भीतर से तुमने देखा या मैंने कि आग लगी या कि लगायी गयी ? अभी तो सब बरातियों की तरह घर को वापस लौट रहे हैं कि 'चलो भई, श्रीवास्तव बाबू के घर लगी हुई बुझ गयी ।'...मगर यही आग अगर मोहल्ले में फैल गयी..."

काँजी-बड़े वाले पण्डित की बात पूरी होते-होते तक, बिशम्भरदयाल गणेशी पान वाले के सामने तक को उठ आये । दो-चार लोग अभी भी पान-सिगरेट खरीदते हुए श्रीवास्तव बाबू के घर लगी हुई आग की चर्चा कर रहे थे ।

उन्होंने अपनी जीभ खोली, तो लगा, भाषा मिट्टी-तेल की तरह बहती चली जा रही है । अपना कहना-सुनना समाप्त करके, लगभग एक घण्टे के बाद, अपने घर की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए ऊपर पहुँचे । आचमन करने के बाद फिर थाली पर झुके, तो उन्हें भूख और आत्म-सन्तोष की प्रतीति साथ-साथ हुई । सामने बैठे हुए दोनों बेटों को सुनाते हुए बोले—"भई, कभी कल-परसों में काँजी-बड़े वाला पण्डित अपनी पार्टी के लिए चन्दा-वन्दा माँगने आवे, तो मने मत करना । ग्यारे या पच्चीस, जितने पर मान जावे, खर्च खाते डाल देना । सयाने यही कह गये हैं कि काँटे से काँटा निकालो । मैं उसका रुख जरा बजरंगी की तरफ कर देना चाहता हूँ । ससुरा बहुत पान की पीक उछालता हुआ बातें करता है । और देखो भई, तुम लोग भी सावधान रहना और दूसरे जान-पहचान वालों को भी जरा अगाह करते रहना । आज श्रीवास्तव बाबू के घर लगी है, कल हमारे घर लग सकती है । परसों किसी और के घर । बनारस में तो सुना है, सौ-पचास मुर्दे भी उठ गये ?"

अब कमरे में रोशनी भी भरी हुई थी और बिशम्भरदयाल जी ने छूटी हुई थाली फिर शुरू कर दी थी। नीचे-ऊपर और आस-पास चक्कर लगा आने से भूख का बढ़ जाना बिल्कुल स्वाभाविक था। अचार का मसाला उँगली से चाटते हुए उन्होंने यों ही एक दृष्टि अपने परिवार वालों पर डाली, तो लगा, सबका चेहरा एक हो आया है। एक आकस्मिक स्तब्धता, तत्परता और सन्नद्धता उन सबकी आँखों में उमस आयी है।

"घबराने की कोई बात नहीं है। उन लोगों की आबादी ही हमारे मोहल्ले में कितनी है ? ले-देके दो ही कुनबे तो रहते हैं, मगर आग और दुश्मन को छोटा करके जानना अच्छा नहीं होता।"—कहते हुए एक लम्बी डकार ले कर, बिशम्भरदयाल चौके से बाहर आ कर, तुष्ट और निश्चित भाव से बरामदे में टहलने लगे।

इस वक्त पूरा मोहल्ला बिजली की रोशनी में डूबा हुआ था।

●

जगह, आँखों के रास्ते धुँआ निकालने की कोशिशें की हों, मगर बीड़ी का तीखा कडुवा धुँआँ वहीं, उसकी कंजी आँखों की पुतलियों पर काले टुकड़े की तरह चिपक गया हो।

इस महीने, आज दूसरी बार मिसेज जायसवाल की कड़ी फटकार सुननी पड़ी। पहली बार इस बात पर, कि बहादुर सिंह ने मिसेज जायसवाल की सात साल की लड़की सोमना को लॉन पर टहलाते हुए प्यार से उसकी एक पप्पी ले ली थी—'बेबी, बाय-बाय !'

दुबारा वह बेबी को प्यार करे, इससे पहले ही श्रीमती जायसवाल पोर्टिको में पड़ी आरामकुर्सी पर से उठ आई थीं और उन्होंने बहादुर को ऐसी हिकारत-भरी आँखों से देखा कि वह सहम उठा था। किसी देवमूर्ति को अपवित्र कर बैठने की सी अपराध-भावना उसके भीतर अपने-आप भर गई थी। नौकर के द्वारा बेटी की 'पप्पी' ले लेने की गुस्ताखी मिसेज जायसवाल बर्दाश्त नहीं कर पा रही थीं और उनकी नाराजी उनके मांसल चेहरे पर से बदबू की तरह फूट रही थी। बहादुर के कुछ कहने से पहले ही वो वापस लौट गई थीं।

अपने साहब और मेम साहब की संगति में बहादुर सिंह ने भी कुछ एक टूटे-फूटे अंग्रेजी वाक्य सीख लिये थे, मगर अधकचरे अंग्रेजी वाक्यों को अपने साहब या मेम साहब के सामने बोल पाने का साहस वह कभी जुटा नहीं पाता था। यहाँ तक, कि बेबी और बिल्लो की देखभाल के लिए रक्खी गयी मिस टामस के सामने भी नहीं। साथियों की जमात में, अपने स्तर के घरेलू नौकरों के बीच, वह अपने-आप को सुरक्षित अनुभव करता था और उन्हें अंग्रेजी गालियाँ देकर प्रसन्नता से भर उठता था। इसके अलावा बेबी और बिल्लो के साथ वह खुलकर

अपने अंग्रेजी-ज्ञान का प्रदर्शन किया करता था और सीखे हुए सारे वाक्यों तथा शब्दों का प्रयोग कर चुकने पर, वह अपने को मुक्त और गौरवान्वित अनुभव करता था, जैसे उसे उसका चिरवांछित उपलब्ध हो गया हो।

अंग्रेजो के टूटे-फूटे वाक्यों के अलावा बहादुर सिंह ने उस विलायती संस्कृति की कई एक खूबियों को भी आत्मसात कर लिया था, जिसे अंग्रेजों के भारत से चले जाने के वर्षों बाद भी—उसके साहब और मेम साहब पैदायशी अंग्रेजों की तरह छाती से चिपकाये रहते थे। रंग-रूप की प्राकृतिक भारतीयता उनकी विवशता थी, मगर वेश और रहन-सहन तथा वार्तालाप से पाश्चात्य दिखने में कोई कोर-कसर बाकी नहीं रखी जाती थी। बहादुर सिंह को भी वो लोग 'बहादर सिंह' ही कहा करते थे।'हिन्दुस्तानी' बोलने की लाचारी भी अक्सर बहादुर सिंह जैसे बे पढ़े लोगों के ही साथ जुड़ी हुई थी।

यह 'पप्पी' वाली दुर्घटना एक बार पहले भी घटित हो चुकी थी।

उस दिन बेबी सोमना को स्कूल तक पहुँचाने के लिए बहादुर सिंह ही गया था, टैक्सी करके। मिस्टर जायसवाल को 'प्लानिंग-कमीशन' की एक 'कान्फीडेन्सीयल' गोष्ठी में भाग लेने के लिये जाना था और मिसेज जायसवाल 'ऑल इण्डिया वीमन्स लीग' की कान्फ्रेन्स मिस नहीं कर सकती थीं। कार एक ही थी, सो मिसेज जायसवाल ने टैक्सी बुलवा ली थी और बहादुर सिंह को ही बेबी सोमना को पहुँचाने भेज दिया था—'बहादुर, आज जरा तुम बेबी को स्कूल पहुँचा आओ। कल से कान्वेण्ट की स्कूल-बस ले जायेगी।'

बेबी को गाड़ी में बिठाते समय, मिस्टर और मिसेज जायसवाल, दोनों ने 'किस' किया था और हाथ हिलाते हुए 'बाय-बाय बेबी, बाय-

बाय डियर !' कहा था। बहादुर सिंह ने उसी समय वे शब्द ध्यान में रख लिये थे और, टैक्सी के स्कूल तक पहुँचने की अवधि में, कई बार दोहराया था—बाय-बाय, बेबी ! बाय-बाय, डियर !

टैक्सी से बेबी सोमना को नीचे उतारते हुए, बहादुर सिंह को उसकी 'फेयरी-टाइप' नीचे तक घेरदार फ्राक बहुत ही आकर्षक लगी थी। उसकी आँखों में एक तृष्णा उतर आयी थी, काश, कि एक ऐसी ही बेबी उसकी भी होती। ऐसा सोचते-सोचते ही, बहादुर सिंह बेबी के कपोलों को प्यार से चूमा था और उत्साह के साथ हाथ हिलाते हुए, स्कूल के अहाते के अन्दर की ओर विदा किया था—'बाय-बाय, बेबी ! बाय-बाय, डियर !'

अपनी मिस्ट्रेस के साथ जाती सोमना ने भी अपने छोटे-छोटे हाथ हिला दिये थे—'बाय-बाय, बहादर सिंह !'

बहादुर सिंह यों आनन्द से गद्‌गद् हो उठा था, मगर दबाने की कोशिश करने पर भी मन के किसी कोने में एक टीस, एक कसक-सी उभर आयी थी, जैसे गहरे पानी में डुबोए जाने पर भी सूखी हुई लकड़ी ऊपरी सतह पर ही उभर आती है। संभव था कि धीरे-धीरे वह टीस दब जाती, मगर मिसेज जायसवाल की फटकार सुनने से वह एक कभी न भरने वाले घाव में बदल गई थी।

हुआ यह कि शाम को मिसेज जायसवाल खुद सोमना को लेने स्कूल गई थीं। योजना-भवन जाकर, वहाँ से खुद कार ड्राइव कर वे ले आई थीं। और बच्ची को घर पहुँचा कर, फिर दुबारा योजना-भवन जाकर मिस्टर जायसवाल को साथ लेकर 'अशोका' में जाने का इरादा था उनका। घर लौटते समय जब मिसेज जायसवाल ने सोमना को

प्यार से चूमा, तो वह बोल उठी—'मदर, बहादुर भी हमको ऐसे ही 'किस' करता है ।'

"कैसे ?"—मिसेज जायसवाल ने चौंककर पूछा था ।

"ऐसे, मदर, ऐसे !"—सोमना ने मिसेज जायसवाल के होठों और कपोलों को बार-बार चूमते हुए कहा था और, लौटते ही, मिसेज जायसवाल ने बहादुर सिंह को बुरी तरह से फटकारा था—"क्यों बहादुर ? तुम यहाँ नौकरी करने आये हो या बच्चों को परेशान करने ? तुम्हें शर्म भी नहीं आती, छोटी-छोटी बच्चियों के साथ छिछोरापन करते हुए ? खबरदार, जो कभी आगे से बेबी के साथ बदसलूकी की । कान पकड़ कर निकाल दूँगी ।"

और बहादुर सिंह को लगा था, मिसेज जायसवाल के लाल नेल-पालिश की पर्तों के नीचे छिपे हुए लम्बे-लम्बे नाखून सचमुच उसके दोनों कानों की जड़ों में गहराई तक चुभ गये हैं । मिसेज जायसवाल मालकिन ही सही, मगर एक औरत के मुँह से ऐसी तीखी फटकार और ताड़ना पाने पर बहादुर सिंह के भीतर के कोने में नौकर की विवशता से दुबका हुआ पौरुष अपमान की दुसह पीड़ा से ऐसे तिलमिला उठा था, जैसे किसी ने राख के अन्दर दबे-दबे सुलगते हुए कोयले पर पानी छिड़क दिया हो ।

मिस्टर जायसवाल के घर लौटने पर, मिसेज जायसवाल ने उनसे भी चर्चा की थी और घृणापूर्वक कहा था—'ये डोमेस्टिक सरवेण्ट 'इंफीरियारिटी काम्प्लेक्स' से ग्रस्त और दूसरों की हैपी 'लाइफ से 'प्रीज्यूडिस्ड' होते हैं, डियर !' इनको जरा 'स्टिक्ट्ली' अपने काबू में रखना चाहिये । नहीं तो, ये बड़े चोट्टे होते हैं और अपने मालिकों की, 'प्राइवेसी' तक डिस्टर्ब करने लगते हैं । यह बहादुर हम के लोगों 'लव-

'एफेयर्स' को लुके-छिपे 'इन्ज्वाय' करता रहता है। ऐसे 'अनसैटिस्फाइड' लोग बच्चों के लिए बड़े खतरनाक और वल्गर-टाइप के होते हैं और उन्हें गंदी आदतें सिखाते हैं।"

उस पूरी रात बहादुर सिंह को बेचैनी और अशान्ति ने घेरे रक्खा था। बच्ची को प्यार करने के बदले में उसे इतनी कठोर प्रताड़ना और घृणा-भरी फटकारें सुनने को मिलेंगी, इसकी तो उसने कल्पना भी नहीं की थी। वह एक ऐसे मुल्क से दिल्ली शहर में नौकरी करने आया था, जहाँ मालिक को 'प्रभु' मान कर, उसके प्रति वफादार रहने की भावना जन्मघुट्टी के साथ पिलाई जाती है। मिसेज जायसवाल की घृणा-भरी प्रताड़नाओं ने उसके मर्मस्थल पर आघात किया था। अपने मालिकों की चाकरी करने पर उसे जो वेतन मिलता था, उन गिनती की रुपल्लियों के साथ जायसवाल-दम्पत्ति की घृणा-प्रताड़ना अधकटी दुम की तरह जुड़ गई थी और सारी रात बहादुर सिंह की आत्मा बिच्छू के दंश की सी यातना से कलपती रही थी और बार-बार उसका हाथ अपनी खुखरी पर चला जाता था।...

खुखरी पर हाथ जाते ही, उसकी आँखों में उतरा हुआ खून पानी बनकर बह जाता है। उसे याद आती है, अपनी अपवित्रता के क्षणों में गोमूत्र की तरह आचमन में लेकर चूमी जाने लायक वह खुली हुई खुखरी की कसम, जो उसने अपनी मंगेतर हिमा रानी के सामने खाई थी, कि 'परदेश तो जाता हूँ, हिमा, मगर चित्त मेरा गुरंगखोला में ही रहेगा।'

चित्त तो आज भी बहादुर सिंह का गुरंगखोला गाँव की उन जंगली घाटियों और छोटे-छोटे सीढ़ी-नुमा खेतों में ही भटकता रहता

है, जहाँ पूर्वी सुपारी के दाने-जैसी सुडौल हिमा रानी उसके प्यार के गीत गाया करती थी।...मगर, विक्रम वीर बहादुर सिंह गुरंग की सारी आकांक्षाएँ शहर दिल्ली के इस आलीशान बंगले के फाटक का पहरा भरते-भरते और चाकरी करते-करते पथरा गई हैं। उसका चित्त गेहूँ का एक पौदा था, गुरंगखोला के किसी खेत में उगा था, मगर बाल छिटकने से पहले ही सूख गया। उसका चित्त एक बुरुँश का लाल फूल था, गुरंगखोला की किसी सलोनी घाटी में खिला था, दिल्ली शहर में मुरझा गया। उसका चित्त शीतल स्वच्छ जल से भरा एक दोना था, मगर हिमा के प्यासे होठों तक पहुँचने से पहले ही रीत गया।

हिमा रानी के पिता रणबीर सिंह ने सात सौ रुपये की मँगौती रक्खी थी और उसी मंगौती की रकम को जुटाने के लिये बहादुर सिंह इस दिल्ली की ओर चला आया था, जहाँ उसकी जात-बिरादरी के हजारों लोग रोजी-रोटी और रुपयों की खोज में पहुँचते ही रहते हैं। बहादुर सिंह को अपने गाँव की काली नदी के किनारे के पत्थरों-जैसे गोल-गोल और मजबूत, परिश्रम की स्फूर्ति से चमचमाते अपने पुट्ठों पर विश्वास था। उसे विश्वास था कि जबभी हिमा रानी का नाम स्मृति में उभरेगा— उसके पुट्ठों पर पसीने की बूँदें चमकने लगेंगी, और चाँदी के रुपयों में बदल जायेंगी।

दिल्ली पहुँचने पर तो बहादुर सिंह ने यही अनुभव किया कि पसीने की न जाने कितनी बूंदें बहाने पर चाँदी का सिर्फ एक रुपया बनता है! ऐसे भी दिन देखे, बहादुर सिंह ने जब दिल्ली की तपती हुई दुपहरियों में नौकरी- मजदूरी की तलाश में लाखों बूदें पसीने की बहाईं, मगर, चाँदी के चमकदार रुपयों की कौन कहे, गेहूँ की मोटी रोटियाँ भी जुटाना मुश्किल हो गया। बडी कठिनाई से पिछले सात-आठ महीनों से जायसवाल साहब के यहाँ नौकरी मिली है, तो चालीस रुपये महीने मिलते

हैं और बहादुर सिंह हर महीने तीस रुपये खुखरी की धार में छुआकर अपने टीन के सन्दूक में रख देता रहा है। टीन के छोटे-से सन्दूक में बहादुर सिंह अपनी आशा और सपनों को इकट्ठा कर रहा था। गुरंग-खोला की किसी छोटी-सी घाटी के किसी छोटे-से खेत में खिली हुई उसके प्यार की जिन्दगी रणबीर सिंह थापा के घर बंधक पड़ी हुई थी और बहादुर सिंह पहरे की रातें उसी के नाम को आकाश के तारों की तरह गिनते-गिनते काट देता था।

अभी पिछले महीने गुरुगंखोला की घाटी में खिला हुआ बुरूँश का लाल फूल, यानी विक्रम बीर बहादुरसिंह का चित्त, टूटकर बिखर गया। लम्बी प्रतीक्षा के बाद हिमा अब दूसरे घर जा चुकी थी और तब से बहादुर सिंह के टीन के सन्दूक में भरे हुए सपने चरस-भरी बीड़ियों और ताश के पत्तों में विलीन होते चले जा रहे हैं। कुकमैन दादा की मण्डली में अब बहादुर सिंह भी शामिल हो गया है।

ऐसी नाजुक मनस्थिति में मिसेज जायसवाल ने बहादुर सिंह की कनपटियों में अपने लम्बे-लम्बे और पालिश लगे तीखे नाखून चुभो दिये हैं और नाखूनों से लगे घावों में विष बड़ी जल्दी फैलता है। बहादुर सिंह की कनपटियों के पास घाव हो गये थे और अब इन घावों में कीड़े कुलबुलाने लग गये हैं। बहादुर सिंह, इस बात को भी भूल नहीं पाता कि निजामुद्दीन की शानदार कोठी के पते आये हुए उसके नाम के पत्र को पोस्टमैन ने नहीं, खुद मिसेज जायसवाल ने दिया था। इस लम्बी, पेशेवर शिकारी की सी आँखों वाली औरत ने उस चिठीट् को पढ़ा जरूर होगा और हो सकता है 'स्वस्ती श्री सर्वोपम' के धूर्त संबोधन के साथ ही वह मनहूस खबर भी पढ़ ली हो?

आज हुआ यह कि बहादुर सिंह मिसेज जायसवाल के छोटे लड़के बिल्लो को बगीचे में टहला रहा था और बीड़ी भी पीता चला जा

रहा था। जली हुई बीड़ी पर कहीं बिल्लो का हाथ चला गया, तो वह 'डैडी-मदर' चिल्लाता हुआ अन्दर की ओर दौड़ा। मिसेज जायसवाल घर में ही थीं, बिल्लो का हाथ देखने के बाद, मिस टामस को बरनॉल लाने के लिए भेजते हुए मिसेज जायसवाल ने पूछा, "हाथ कैसे जल गया बिल्लो ?"

सिसकते हुए बिल्लो ने उत्तर दिया—"मम्मी, बहादुर बीड़ी पीता है।"

बिल्लो को मिस टामस के पास छोड़कर, मिसेज जायसवाल क्रुद्ध बाघन की तरह फुफकारती बहादुर सिंह के पास आई थीं, और बहादुर सिंह की ओर तीव्र घृणा के साथ घूरते हुए उन्होंने आज फिर उसी तरह फटकारा था, जैसे बेबी सोमना को प्यार करने पर डांटा था—"ए बहादुर, तुमको शरम नहीं आती ? दिन-भर गंजेड़ियों की तरह बीड़ी फूंकते रहते हो। साहब को आने दो, हम तुम्हारा हिसाब करवा देते हैं।"

श्रीमती जायसवाल जब बहादुर को नौकरी से निकालने की धमकी देती हैं, उनके मुँह से सिगरेट की बदबू आती हुई महसूस होती है और अपने क्रोध को दबाते हुए, बहादुर सिंह जानवरों की सी लाचारी अनुभव करने लगता है।

बीड़ी तो विक्रम बहादुर ने मिसेज जायसवाल के फटकारते ही बुझा दी थी, मगर प्रताड़ना-भरी उनकी आवाज़ गरम तेल के भभूकों की तरह उठ-उठकर उसके कलेजे को जलाती चली जा रही थी। अपने अतीत और वर्तमान के सूत्रों को जोड़ने पर, बहादुर को लग रहा था, उसके सारे सपने ठीक इसी बीड़ी के अधपिये ठूँठ की तरह बुझ गये हैं और कलेजे में सिर्फ जलन शेष रह गई है।

बहादुर सोचता रहा, आते महीने से उसे तीसवाँ लग जाएगा। उसकी उमर के लोग एक भरी-पूरी गृहस्थी के मालिक बन जाते हैं। उसके गाँव में ही उसका समवयस्क चचेरा भाई जगतबहादुर भी था, गाँव छोड़ने तक उसकी भरी-पूरी गृहस्थी बहादुर अपनी आँखों से देखता रहा। सोने की बुलाकी को ओठों से उठा-उठाकर बातें करने वाली उसकी पत्नी रुपमा और तीन स्वस्थ-सुन्दर बच्चे। बहादुर को याद आया कि जगतबहादुर को फर्शी में तम्बाकू पीने का बहुत शौक था और वह बार-बार रुपमा को या बड़े बेटे गगनबहादुर को हुक्का ले आने के लिये आवाज देता रहता था।

बहादुर सोचने लगा, अगर उसकी पहली घरवाली चन्द्रा रानी असमय ही न चली गई होती, तो आज उसका बड़ा बेटा भी सात-आठ बरस का होता और घर की देहली पर बैठा-बैठा बहादुर उसे आवाज देता—फर्शी भर लाने के लिए। खैर, पहली नहीं रही, दूसरी हिमा ही घर आ गई होती, तो उसी से भरवाता रहता बहादुर फर्शी। कितना सुख मिलता हिमा को फर्शी भरने का 'हुकुम' देते हुए?...मगर हुकुम देने का वह सुख बीड़ी के ठूँठ की तरह बुझ गया है। मिसेज जायसवाल को 'हुकुम, मेम साहेब!' और मिस्टर जायसवाल को 'हुकुम साब!' कहते- कहते जीभ का सारा ओज ही पथरा गया है।...

बहादुर का मन कभी-कभी कल्पना करने को होता है कि मिसेज जायसवाल को खुखुरी दिखाकर, अपने लिये फर्शी भर लाने का 'हुकुम' दे—'ए मोना बाई, हमारे वास्ते फर्शी'...लेकिन भीतर-ही-भीतर सारी कल्पना साँप की तरह रेंगती रह जाती है। बहादुर लम्बे कद और भरे हुए जिस्म और शानदार कोठी और भड़कीले कपड़ों में शेरनी-जैसी दिखती हुई मिसेज मोना जायसवाल के सामने पड़ते ही 'हुकुम मेम साहब!' के अलावा कुछ कह नहीं पाता है।

दोपहर की छुट्टी का वक्त बहादुर की मुक्ति का समय होता है। बहादुर को लगा कि यहीं बैठा रहा, तो कलेजा और अधिक जलता रहेगा। मन बहुत उदास हो चुका था और उसको बहलाने का ठौर एक ही था—खानखाना मक़बरा !

निजामुद्दीन के बड़े-बड़े बंगलों के घरेलू नौकरों से लेकर चौकीदार और ड्राईवर तक के रुतबे के बहुत-से लोगों का यह मनोरञ्जन केन्द्र था, फालतू वक्त तथा छुट्टी के दिनों का और कुकमैन दादा इस मनोरञ्जन केन्द्र का सरगना। ताश व शतरंज-कौड़ी खेलने से लेकर के, सिनेमा के टप्पेदार शृंगारिक गीत गाने तक की ट्रेनिंग वही दिया करता था सब लोगों को। उसके शागिर्दों की टोली बहुत बड़ी थी, मगर शादीशुदा उन में बिरला ही होता था। शादीशुदा लोग वहीं आया करते थे, जिनकी बीवियाँ उनके 'मुलक' में ही रह गई थीं। बटलर-बावर्ची, चौकीदार और ड्राइवरों के अलावा बस्ती के कई फालतू लोग भी वहाँ जुट जाया करते थे। सिख, पंजाबी, बंगाली, मद्रासी-गोरखा और मराठा आदि सभी अपने अवकाश के क्षणों का सदुपयोग वहीं आकर किया करते थे।

कुकमैन दादा साठ से आगे पहुँच चुका था और अपने जीवन के पचीस-तीस वर्ष उसने बड़े-बड़े साहबों के यहाँ और कनाट प्लेस के बड़े-बड़े होटलों में बिताये थे। मेट्रोपोलिया की आर्केस्ट्रा-पार्टी में तीन साल तक लगातार माउथ-ऑर्गन भी बजा चुका था। अब पिछले सात-आठ वर्षों से निजामुद्दीन के घर-गृहस्थी के सुखों से वंचित नौकर-चाकरों की नीरस जिन्दगी में आनन्द और संगीत घोलता चला आ रहा था कुकमैन दादा और खुद भी छड़ा था। न जोरू, न जाँता, फकत अपने से नाता। यों कई मेम साहबों, आया, मास्टरनियों से लेकर मेहतरानियों के साथ तक के अपने रोमांसों की चर्चा कुकमैन दादा बड़ी आकर्षक शैली में किया करता था।

ताश, शतरंज और रोमांस-चर्चा के अलावा, कुकमैन दादा के शागिर्दों का मन बहलाने का एक साधन और भी था। चौराहे के गोल चक्कर से होकर गुजरने वाली औरतों पर छींटे कसना और उनसे अपने-अपने सम्बन्ध जोड़ना—'देख यार, वह मेरी गुलबदन जा रही है !... अरे, जरा मेरी माशूक के पपीते तो देखो !....अरे यार, यह मेरी बीवी जा रही है ! सारे बच्चे मेरे ही हैं।'...और फिर चरस-भरी बीड़ी या सिगरेट के धुएं के छल्ले के साथ नई-पुरानी फिल्मों के रंगीन गाने हवा में उछाल दिये जाते—'तेरी बहकी-बहकी चाल। हो, तेरे गोरे-गोरे गाल।' या कि 'जादूगर सैयाँ, छोड़ मेरी बैंयाँ, अब घर जाने दे !' और इनकी स्वरचित 'पैरोडियाँ'—तेरे गोरे-गोरे गाल—हो मेरे जादूगर सैयाँ, छोड़ मेरी...और फिर बुलन्द कहकहे, लेकिन सब-कुछ इस तरह कि सारा शोर-शराबा, नाले में बहते पानी की तरह, सिर्फ अपनी ही मण्डली तक सीमित रहे, सड़क पर न फैले।

पड़ोस के चोपड़ा साहब के ड्राइवर सरदार निहाल सिंह के साथ पिछले महीने से बहादुर ने भी कुकमैन दादा की मण्डली में आना और ताश-कौड़ी खेलना शुरू कर दिया था। हार-जीत से उसे कोई खास सरोकार था नहीं। मन बहल जाता था, इतना काफी था। पिछले कई दिनों से बहादुर के मन की घुटन बढ़ती ही चली जा रही थी, उसका खमीरा यहाँ आने पर उतर जाता था और बहादुर शान्त होकर बँगले की ओर लौट जाता था। हिमा रानी कस्तूरा हिरन-जैसी बहादुर की पहुँच से ओझल हो चुकी थी, मगर उसके लिए भूलना कठिन था। कुकमैन दादा के अखाड़े में आकर, बहादुर चरस-भरी सिगरेट के कड़वे धुएँ और लोगों की चुहलों के बीच उस नेपाली कस्तूरी की सुवास से वंचित हो जाने की तकलीफ और मिसेज जायसवाल की ताड़नाओं के

सर्पदंश को बहुत-कुछ भूल जाता था....और, सिर्फ इसीलिए, बहादुर पिछले कई दिनों से वक्त मिलते ही यहाँ चला आता था।

आज भी बहादुर आया और पत्थर पर गुमसुम बैठ गया। मिसेज जायसवाल की फटकारों ने उसके दिमाग को इतना बोझिल बना दिया था, कि वह कुछ भी तय नहीं कर पा रहा था, यहाँ पहुँचने पर अब उसे करना क्या है।

सरदार निहाल सिंह ने पीठ पर हाथ मारते हुए पूछा—'की होया, पुत्तर ?' तो कुकमैन दादा सड़क पर जाती एक जवान औरत की ओर इशारा करके, अपने पोपले मुँह को फुलाते हुए बोला—"सरदारा, एनादी खसमखानी एनानु छड्डु के चली गई सी, अपने दूसरे यार दे नाल...अरे बहादुर, गम न कर, गम तो वो सुसरे करें, जिनकी एक बीवी हो, हमारी तो, यार, दिन-भर में हजारों बीवियाँ सुसरी इसी जंगपुरा-निजामुद्दीन रोड पर गुजर जाती हैं। क्यों, सरदारा ?"

शागिर्दों में से किसी ने फिल्मी गाने की पेरौडी गाकर, किसी ने सड़क की ओर आँख दबाते हुए, सीने पर हाथ मार कर, 'हाय, मेरी गुल्लो !' कहते हुए और किसी ने चरस-भरी सिगरेट के धुँए के छल्ले के साथ खारी बावली के कोकशास्त्रों में से सीखे हुए तरीके से यौन-सम्बन्ध कायम करने की अपनी खूबी का नारा लगाया, मगर बहादुर की उदासी फिर भी दूर नहीं हो पाई। उल्टे वह उन लोगों को यों ठहाका लगाते और बकते देखकर खीझ गया। वह सोचने लगा, सामने चौराहे पर से सैकड़ों मिसेज जायसवाल-जैसी अमीर औरतें गुजरती हैं और ये लोग इस मकबरे के पत्थरों पर बैठे-बैठे उनके खसम बनते रहते हैं, लेकिन इनमें से हरेक उस-जैसा ही कायर और दब्बू है। किसी के बूते का यह नहीं, कि जैसे नाते-रिश्ते दूर-दूर से बक-बक कर

जोड़े जाते हैं, वैसा कोई रिश्ता यथार्थ में भी जोड़ सके। सड़कों पर मिसेज जायसवाल-जैसी औरतें घूमती रहती हैं और इस तरह के छोटी औकात के आवारा लोग उन्हें अपनी बीवी करार देकर, ठहाके लगाते हैं। बँगले में मिसेज जायसवाल बहादुर को बुरी तरह डाँटती हैं और कान पकड़ कर नौकरी से निकाल देने की धमकी देती हैं और बहादुर 'मेम साहिब, मेम साहिब, जी हुजूर !' करता मिमियाता रह जाता है !

बहादुर यह सब सोचते-सोचते बौखला उठा और पीठ पर से सरदार जी का हाथ एक ओर झटकने के बाद, चिल्लाया—"अरे, सालो ! तुम लोगों के आँख मारने, गाली देने और बकने से ही बन जायेगी कोई तुम्हारी बीवी ? सब बकते हैं साले, सिर्फ बकते हैं। जरा सड़क पर जाके कोई साला किसी मेमसाहिबा को पकड़कर तो दिखावे ? सब साले बकौड़े हैं। खुद साले मुँह में थूक इकट्ठा करते हैं और खुद ही चाट जाते हैं।"

बहादुर की इस अप्रत्याशित बौखलाहट से, पहले तो वो लोग कुछ चौंके और फिर कुछ को अपने इस अपमान से गुस्सा चढ़ आया। लेकिन लोगों के कुछ कहने से पहले ही कुकमैन दादा ने स्थिति सँभाल ली—"ठहरो, कोई दूसरा बहादुर से न बोले। बहादुर आज बहुत परेशान है। क्यों बहादुर, बात क्या हो गई, भैये ? तुम तो आज एकदम आउट ऑफ कंट्रोल हो रहे हो ! हम सब लोग तुम्हारे बिरादर हैं। अपने बिरादर लोगों पर ऐसे बिगड़ना ठीक नहीं। बताओ तो सही, आखिर बात क्या है ?"

बहादुर शांत हो गया था, बोला—"कुछ नहीं, दादा ! आज कुछ तबियत ठीक नहीं है। जब तबियत ठीक नहीं रहती, तो हमको आदमी का इस तरह घोड़ों की माफ़िक हिनहिनाना अच्छा नहीं लगता है।"

कुकमैन दादा गंभीर हो गया और बोला--"बहादुर, तुम्हारी तीबयत ठीक नहीं है, यानी तुमको किसी बात का गम है। गम है, बहुत ज्यादा है, तुम दूसरे लोगों को हँसता देख कर नाराज होता है ना ? मगर प्यारे, गम हम लोगों में किस की लाइफ यानी कि जिन्दगी में नहीं है ? गम तो खुद मेरे दिल में भी है, मगर ऐसे, जैसे तालाब में पानी के नीचे कीचड़ रहता है। जितना हमने खो दिया, तुमने अभी आँख से देखा नहीं होगा। माँ-बाप, बीवी-बच्चा और मिट्टी-सोना—एक-एक करके सबको खोया। सीने के अन्दर सबका गम है। इतना गम है, बहादुर, कि अगर हम अपने सीने का गम खाली करेगा तो यह पूरा मकबरा भर जायगा !"

बोलते-बोलते कुकमैन दादा की आँखों से पानी रिसने लगा था और आवाज भारी हो गई थी, लेकिन कुकमैन दादा एकाएक फिर खिलखिला उठा—"मगर ये साला सीने का गम रोने-झींकने से नहीं दबता है, बहादुर ! इस गम साले को सीने में दबाने के लिए तो बहुत बड़ा पत्थर चाहिये।...और जिंदगी-भर हम सब उस पत्थर को ढूँढ़ते हैं—मगर मिलता नहीं ससुरा। वो तो अमीरों के बँगलों में लगा हुआ है।...और तू जानता है, बहादुर, कि बँगले का पत्थर खिसकाना कितना इम्पॉसिबिल होता है ? ओके, अब हम ज्यादा अपनी फिला-सफी झाड़ेगा नहीं।...मगर, इतना तुमको बता देता हूँ कि क्या तुम, क्या सरदार और क्या ये अब्दुल्ला, गयादीन और बाकि--हम सब के पास अपने सीने के गम को दबाने का एक ही तरीका है, खयाली पुलाव पकाना। बीवी हमारे पास नहीं और बच्चे नहीं, ठहाका लगाते हैं—वो चली मेरी गुलबदन ! धन-दौलत हमारे पास नहीं, तो हम बँगलों की ओर बेर-बेर अपनी आँख खड़ी करते हैं—वो रही साली अपनी बिल्डिंग !...यानी जो-जो चीज हमारे पास नहीं है, जिस-जिस

चीज को हम पा नहीं सकते, उसके खयाली और जुबानी पुलाव पकाते हैं और इस झूठे भरम से अपने सीने के असली गम को दबाने की कोशिश करते हैं। यही झूठा भरम और हसीन धोखा है, बहादुर, जिससे हम अपनी जिन्दगी को दुख-दर्दों को दबाने की कोशिश करते हैं। यह झूठा भरम, यह हसीन धोखा कोई मेरा, यानी कुकमैन दादा का नहीं, बल्कि खुद शहनशाह जलालुद्दीन अकबर का बनाया हुआ फारमूला है, जो हम जैसे हरेक इन्सान पर लागू होता है !"

अपनी बात समाप्त कर, बहादुर की पीठ थपथपाते हुए कुकमैन दादा शतरंज खेलने के लिए दूसरी ओर बढ़ने ही लगा था कि सरदार जी ने टोक दिया—"सुसरा शहनशाह अकबर का फारमूला की होंदा सी ?"

'होंदा सी त्वाडी'.....एक भद्दी गाली देकर कुकमैन दादा बोला—"सुनो, पुत्तर लोग, शहनशाह अकबर के फारमूले की 'हिस्ट्री' को सब लोग सुनो। एक वक्त की बात है, उस समय हुआ क्या, कि इस दिल्ली शहर में शहनशाह अकबर हिज हाइनेस अकबर की सरकार कायम थी। एक दिन, बाईचांस, शहनशाह अकबर को रात-भर नींद नहीं आई और वो कुछ बेचैनी महसूस करते रहे, तो उन्हें यह ख्याल आया कि मेरे पास इतना बड़ा राज है, आलीशान महल है, सैकड़ों एक-से-एक खूबसूरत और जवान बेगमें मेरे हरम में हैं, यानी कि शानोशौकत और ऐशोआराम की बेहतरीन से बेहतरीन चीजें मेरे पास हैं, मगर फिर भी मुझे चैन नहीं, नींद नहीं। बगल में सब्जपरी की मानिन्द खूबसूरत जिस्म बेपर्दा है, मगर मुझे चैन नहीं, नींद नहीं।....आखिर वो लोग कैसे अपने दिन काटते होंगे, जिनको न दौलत का सुख है, न खूबसूरत नाजनीनों की सोहबत और न आलीशान महलों का रहना नसीब है।...शहनशाह सोचते रहे, इसी दिल्ली शहर में ऐसे भी लोग बहुत होंगे, जिनके पास न

घर होगा, न दौलत होगी और न बीवी, न बच्चे। ऐसे बदनसीब कैसे चैन पाते होंगे ?....बस, मेरे पुत्तरों, यह ख्याल आना था, कि दूसरे दिन शहनशाह अकबर दिल्ली के फुटपाथों पर भेस बदल कर घूमने लगे।"

इतना कहने के बाद, कुकमैन दादा थमा और फिर दो-चार कश खींचकर बोला, "और तब गौर से देखी शहनशाह अकबर ने हमारे-तुम्हारे-जैसे बदनसीब आवारागर्दों की जिन्दगी। सभी कुछ-न-कुछ जुबानी पुलाव पकाते थे और ठहाके लगाते थे। किसी को बीवी, किसी को माशूका और किसी को छमिया बनाते थे, ठहाके लगाते थे। शहनशाह अकबर ने गौर से देखा, समझा और यह तय पाया, जरा और करीब से इन लोगों की बातें सुनी जाएँ ! तो सुना क्या कि एक फटीचर ने दूसरे खस्ताहाल से कहा—'साले, बहुत अकबर बादशाह बनते हो ? दूंगा एक लात, तो सारी बादशाही पीछे के रास्ते उतर जाएगी !' जवाब देनेवाला बोला—"क्यों बे, ससुर अकबर बादशाह को बीच में क्यों ला रिया है ? अकबर बादशाह की धौंस दिखाना तू सुसरी उसकी बेगमों को। हमारा वो ससुर कौन जोरू का भैया लगता है ? हम रखते हैं ऐसे बादशाहों को अपने तख्तेताऊस पर लटका कर ! बादशाह अकबर होगा ससुर अपने घर का, हम करते हैं उसकी परवा कद्दू से ! समझे ?' और ज्यादा सुनने की ताब शहंशाह अकबर में रही नहीं, कम्बल ठीक से लपेटता हुआ लाल किले की तरफ भाग खड़ा हुआ कि—'या परवरदिगार, नियामतें तूने सबको बख्श रखी हैं। मुझे बादशाहत बख्श रखी है, तो कमनसीबों फटेहालों को तख्तेताऊस !' यानी, बेटे, यह हजार गमों के बीच जीने की जो जिंदादिली है—यही वह खुदाई नियामत है, जिसके बूते पर कमनसीबों की जिंदगी कटती है !"

थोड़ा ठहरकर, कुकमैन दादा ने अपने चारों ओर देखा। सबके चेहरों पर कौतूहल का सन्नाटा पसरा हुआ था। बहादुर की आँखें

सिमटकर, और छोटी हो गई थीं।

"जिस बदनसीब के पास जो चीज नहीं होती, उसे वह ख्याली और जुबानी भरमों से हासिल करने की कोशिश करता है, और अपने गम के उफानों को, अपनी कमनसीबी के मनहूस साये को दबाने में कामयाब हो जाता है। ठहाके लगाता है, और अंट-संट बकता है। अंट-संट बकता है और चैन पाता है। यही 'शहनशाह अकबर का फारमूला' है, जो हम-जैसे हर इन्सान पर लागू होता है। हिप्-हिप्..."

हुर्रे....हुर्रे हुर्रे!

कई जोर-जोर के ठहाके लगे और कुकमैन दादा शतरंज खेलने बैठ गया।

दूसरे दिन बहादुर फाटक के पास बैठा हुआ था, तो उसे लग रहा था कि वक्त बहुत-कुछ बदल गया है।

मिस्टर और मिसेज जायसवाल कार में बैठे बाहर आये, तो बहादुर सिंह तपाक के उठा और सिर झुकाकर, बोला—"सलाम हुजूर! सलाम, मेम साहिब!"

बहादुर की सलामी का उत्तर थोड़ा-सा सिर हिलाकर देने के बाद, मिसेज और मिस्टर जायसवाल दोनों रोज की तरह एक साथ बोले—'बहादुर, बँगले को देखभाल ठीक से करना। बिल्लो का भी ख्याल रखना।"

"बहुत अच्छा, हुजूर! जो हुकुम, मेम साब!" कहकर बहादुर ने फिर अपना सिर झुकाया और कार आगे बढ़ गई, तो नेपाली भाषा में एक भद्दी-सी गाली पहले मिस्टर जायसवाल को दी और फिर मिसेज जायसवाल को आँखों में ठहराते हुए, उनसे अपने यौन-सम्बन्ध की

कल्पना की। और फिर बीड़ी जलाकर, जोर से खिलखिला उठा—"तेरी आमा लाई..."

थोड़ी देर बाद, बीड़ी पीते-पीते बहादुर ने देखा, बिल्लो लॉन में उतर आया है और आया बरामदे में खड़ी अपनी 'बॉडी' ठीक कर रही है। बहादुर सिंह ने आया को भी एक गाली दी और फिर प्यार के साथ बिल्लो को पुकारा—"छोटा साहब, छोटा हुजूर!"

पाँच साल का बिल्लो वहीं से चिल्लाया—"बहादुर!"

"छोटा हुजूर, इधर हमारे पास आओ। हमारे साथ खेलेगा?" बहादुर सिंह ने बुलाया।

बिल्लो जब पास आ गया, तो बहादुर ने उसे अपनी गोद में उठा लिया। थोड़ी देर प्यार करने के बाद फुसफुसाया—"हमारा बेटा!"

बिल्लो ने उसकी ओर देखा, तो धीमे स्वर में बोला—"तुम हमारा बेटा है बिल्लो साहब! बोलो, यस! बोलो, बोलो!"

बिल्लो कौतूहलपूर्वक चुपचाप बहादुर को देखता रहा।

बहादुर ने इस बार डपट दिया—"बोलो यस!"

बिल्लो सकपका गया, उसकी समझ में कुछ भी आ नहीं रहा था। उसने कह दिया—"ओ यस!"

"गुड, भेरी गुड! तुम हमारा बेटा, हमारा ही बनाया हुआ। हम तुम्हारा बाप—बोलो यस!"

"ओ यस! ओ यस!" बहादुर का बढ़ता हुआ उत्साह देख कर बिल्लो ने फिर दोहरा दिया तो बहादुर को लगा, जैसे वह इस दुनिया

में ही नहीं। बेसुध-सा, आवाज को एकदम दबाकर, बोला—"हम तुम्हारी माँ का खसम है। बोलो, यस !"

इस बार बिल्लो ने 'ओ यस !' कहा, तो बहादुर की आँखों में एक असीम तृप्ति उभर आयी और बीड़ी के आधे से ज्यादा जल गये ठूँठ को होठों पर टिकाते हुए बहादुर को ऐसा लगा, जैसे उसने फर्शी की तीन हाथ लम्बी निगाली अपने होठों से लगा ली हो।

●

दूब कितनी मुलायम होती है

●

हो सकता है, बहुत-से लड़कों को न होती हो, लेकिन उसे असुविधा अनुभव होती है। हालाँकि अब वह स्वयं ही अपने को लड़कों की श्रेणी में नहीं रखना चाहेगा। अपनी प्रेमिका की प्रतीक्षा में यूनीवर्सिटी-कैम्पस में घूमना अब उसे एक तरह का बचकानापन ही लगता है। उसकी उम्र अट्ठाईसवें साल में है और वह पी० एम० पी० में अर्थशास्त्र का लेक्चरर है।

यूनीवर्सिटी-कैम्पस काफी बड़े क्षेत्र में फैला हुआ है और लगभग सभी जगह पेड़-पौधों की कतारें अपनी क्रमबद्धता में हैं। वह भी जानता है कि यूनीवर्सिटी खुलने के शुरू-शुरू के दिनों की चहल-पहल में एक खास किस्म का एकान्त रहता है। सारा वातावरण बच्चों से

भरी हुई झोल का-सा हो जाता है। इन दिनों प्रायः सभी लड़के-लड़कियों में एक आत्म-केन्द्रितता और आभिजात्य की-सी मानसिकता बनी रहती है। इस तरह की मानसिकता वाली भीड़ के बीच का एकान्त सुविधाओं से भरा हुआ होता है और आपसी सम्बन्धों की शुरूआत की जा सकती है। लेकिन, बस, आपसी सम्बन्धों की हद तक ही। इससे आगे एक कदम बढ़ते ही, एक निहायत घरेलू किस्म के वातावरण से साबका पड़ने लगता है और आप असुविधा अनुभव करने लगते हैं।

विद्यालय के अहाते में प्रवेश करते हुए, आज उसे एक रोमांच की सी अनुभूति हुई थी। नीम के पेड़ों में एक धीमी हलचल थी। हवा तेज से कुछ कम थी। उसे लग रहा था, यहाँ एक खास तरह का सम्मोहन है, जो हवा की तरह दिखता नहीं है, लेकिन सम्पूर्ण अस्तित्व में बहता है। सचमुच यह स्थिति कितने रोमांच की होती है कि किसी लड़की की प्रतीक्षा में आपका समूचा अस्तित्व एक नीम के पेड़ की तरह, अपनी ही जगह और लय-बद्ध ढंग से, विचलित हो रहा होता है और आप इसे देख नहीं सकते।

वह हिन्दी-विभाग वाले रास्ते पर टहल रहा था। थोड़ी दूर तक आगे जाकर, पीछे लौट आता था। उसे विभागाध्यक्ष की व्यापारी की-सी शातिर आँखों से बेहद चिढ़ है और यह सचमुच कितनी वाहियात बात है कि बाधाएँ हमेशा सिर्फ उन्हीं लड़कियों के इर्द-गिर्द अंग-रक्षकों के से शातिरपने में मौजूद रहती है, जिनसे प्रेम किया जा रहा हो।

उसने एकाएक यह निर्णय लिया कि अब उसे अपनी इस बेचैनी से इधर-उधर चहलकदमी करने को 'किसी लड़की के इन्तजार'-जैसी घिसी-पिटी औपचारिकता में देखने की जगह 'अपनी प्रेमिका की

प्रतीक्षा' जैसे रोमांचक यथार्थ के रूप में अनुभव करने का साहस बरतना चाहिए। यह कोई काल्पनिक स्थिति नहीं होगी। बीना कोई 'फ्लर्ट' किस्म की लड़की नहीं है। वह, लगभग नितान्त आत्ममुग्ध होता हुआ, उन पिछले अवसरों को याद करने लगा, जिनमें कभी सुबह का मौसम हुआ करता था, कभी शाम का नीम-धुंधला पन। कभी मद्धिम धूप, कभी थोड़ी-सी सर्दी अथवा कभी-कभार बारिश की बूंदा-बांदी। वह देर-देर तक उसे छेड़ता-छूता रहता था। और वह किंचित सहमी हुई-सी रहती थी, लेकिन आत्मविस्मृत भी। जैसे उसके भीतर याददाश्त-जैसी कोई चीज रह नहीं गई हो। यह थोड़ा-सा सहमना और मुग्धता में डूबा हुआ रह जाना, वह जानता है, बीना-जैसी कम उम्र की लड़की के लिये नितान्त स्वाभाविक था।

वह लगातार कोशिशें करता रहा कि बीना के चेहरे, उसके चलने फिरने और उसके बोलने को अपनी स्मृतियों में आकार दे सके, लेकिन ऐसा करते हुए बीना की आकृति को वह ठीक से पकड़ नहीं पाया। जब साल-भर पहले उसकी मां की मृत्यु हुई थी और तार पाकर, वह घर पहुँचा था, मां की अन्त्येष्टि की जा चुकी थी। सिर्फ महीना-भर पहले ही तो वह माँ से मिल कर गया था। तब वह खास अस्वस्थ भी नहीं थीं। घर पहुँच कर, वह लगातार अपने भीतर कोशिश करता रहा कि मां की आकृति को याद कर सके, लेकिन हर बार माँ का पूरा चेहरा जैसे तिनकों में फैल कर रह जाता था।

बीना को आलिंगनबद्ध करने की स्मृतियों के बीच माँ की याद आ जाने पर, उसे एक हल्की-सी आत्मग्लानि अनुभव हुई। दरअसल अपने भीतर वह काफी हद तक नैतिक किस्म का युवक है।

उसने तय किया कि बीना आ जाए, तो दोनों शाम का वक्त तिलियरगंज की तरफ के एकान्त में व्यतीत करेंगे। और एक साधारण-

सी शुरूआत के निहायत अमूर्त ढंग से प्रेम में बदल जाने की जो रोमांचकता उन दोनों के बीच में आ चुकी है--वह कोशिश करेगा कि इस सिलसिले में वह अपने-आप को पूरी ईमानदारी के साथ उसके सामने रख सके।

तो क्या वह सीधे-सीधे विवाह का प्रस्ताव उसके सामने रख सकेगा ?

उसे लगा, जैसे वह एकाएक अपनी सावधानी में लौट गया है। बुशर्ट का कालर ठीक करते हुए, उसने एक बार चारों ओर देखा। बीतते हुए जुलाई के महीने की उमस में हो आए पसीने को बाँहों पर से और गले के आसपास पोंछते हुए, उसने प्यास महसूस की। लेकिन हो सकता है, वह कैण्टीन की तरफ जाए और इधर बीना आ कर, विभागाध्यक्ष के कमरे में चली जाए!

ठीक है, मुलाकात बाद के किसी खाली वक्त में भी की जा सकती है, लेकिन लगभग सवा महीने के बाद लौटने में से वह प्रतीक्षा की विह्वलता को इस तरह प्रतिबिम्बित कर नहीं पाएगा, जिसे वह एक ऐसी खूबसूरत मछली की तरह सम्भाले हुए है, जिसे किसी काँच के बरतन में छोड़ देना है। वह धीमे-धीमे सीटी बजाने लगा था। उसे लगा, वह आवश्यकता से कुछ ज्यादा विचलित हो रहा है। वह कोशिश करने लगा कि अपने को आसपास के वातावरण के बीच सन्तुलित कर सके।

होस्टल से वह निर्धारित समय से काफी पहले ही निकल आया था। उसे सम्भव नहीं लगता कि प्रेम में समय को ठीक-ठीक बरता जा सके। वह यह भी जानता है कि प्रेम के साथ-साथ एक खास किस्म

की भाषा भी शुरू होती चली जाती है। भीतर-ही-भीतर एक अलौकिकता का-सा कुहासा घिरा रहता है और बोलते वक्त लगातार एक अधूरापन हावी रहता है। न-जाने कितनी बार ऐसा हो चुका है कि प्रेम को ले कर अत्यन्त गहरी और महान सूक्तियाँ उसने अपने भीतर महसूस की हैं, लेकिन बोलते वक्त सब-कुछ निहायत दोहराई हुई-सी बातों में बदलता चला गया है और फिर उसे बीना को प्रभावित कर पाने का इसके अलावा कोई उपाय नहीं सूझता है कि वह उसे चूमना या आलिंगनबद्ध करना शुरू कर दे।

चैथम लाइन्स पर भी उसे कुछ देर चहलकदमी करनी पड़ी। फिर बीना का आना और समीप पहुँचना उसे ऐसा लगा, जैसे वह किसी अजनबी जगह में से एकाएक बाहर निकल आई हो।

'हैलो...'—उसने धीमे-से पुकारा और प्यार से भरा हुआ उसका यह छोटा-सा शब्द सारे वातावरण में छा गया।

थोड़ा-सा आगे बढ़ते ही उसने धीमे से बीना का हाथ अपने हाथ में लिया, 'तुम कब लौटीं...?'

'कल सुबह।' उसका उत्तर अत्यन्त संक्षिप्त था और धीमे-से मुसकरा दी थी वह।

'तुम अब भी बच्चों की तरह मुसकराती हो—बहुत छोटी और पवित्र मुसकराहट! देखो, आज मुझे तुम से ढेर सारी बातें करनी हैं। मैं नहीं चाहता कि हमारे-तुम्हारे सम्बन्धों में भविष्य में किसी तरह की गलतफहमियाँ आड़े आएँ। दरअसल प्रेम को मैं जीवन में एक वरदान की तरह लेता हूँ और...!'

वह चुपचाप चल रही थी। उसे इस बात से थोड़ी खीझ हुई और शायद, दुख भी कि वह 'रिस्पांस' नहीं दे रही है। उसने फिर से गौर

से उसके चेहरे को देखना शुरू किया। नहीं, इस सवा महीने के अन्तराल में कुछ नहीं बदला है। वही तरल किस्म का पारदर्शी कैशोर्य अब भी इस लड़की के चेहरे पर ज्यों-का-त्यों मौजूद है।

'तुम शायद, इस बात पर हंसोगी, लेकिन विमल की यह बात मुझे अक्सर याद आती है कि कम उम्र की लड़कियों से प्रेम करना बहुत 'रिस्की' होता है और किसी हद तक बेवकूफियों से भरा हुआ भी...!'

'यह विमल कौन है ? तुम्हारा कोई दोस्त होगा !'

उसे लगा, जैसे किसी ने उसके पाँवों पर लँगड़ी लगा दी है। उसने धीमे-से अपने सिर को झटका दिया। शायद, उसके चेहरे पर कुछ दया का-सा भाव उमड़ आया होगा। ठीक वैसा ही, जैसा कम उम्र की लड़की के प्रति कोई नैतिक और वैचारिक रूप से सावधान व्यक्ति कर सकता है। वह धीमे-से हँस दिया।

'दरअसल मैं खुद नहीं सोचता था कि बात यहाँ तक बढ़ जाएगी और धीरे-धीरे तुम मेरे अस्तित्व पर छा जाओगी। पिछले दिनों एक लम्बे अरसे तुम से दूर रहने के बाद ही मैं जान पाया कि हम लोग एक-दूसरे के कितने नजदीक पहुँच गए हैं। मैं अपने भीतर के अंधेरे में अंगुलियों को आगे बढ़ाता था, जैसे कि तुम कोई रजनीगन्धा की बेल हो और मैं तुम्हें छू लूंगा।...ओह, बीना, किसी रीतिकाल के कवि ने जो यह कहा है कि—हे राधा, तुम वह कस्तूरी-गन्ध हो, जो मेरी आत्मा में से फूटती है और मुझे ही भरमाती रहती है...!'

'किसने कहा है ?' कहते हुए, वह ऐसे घूम गई, जैसे सन्दर्भ के लिये अपनी 'नोटबुक' में लिख लेना चाहती हो। वह सहसा कुछ बता नहीं पाया।

'हमारे 'सर' कह रहे थे कि बिहारी पर तुम्हारी अच्छी 'स्टडी' है। एम० ए० के बाद, डि० फिल० के लिए तुम्हें 'रीतिकालीन कवियों की नायिकाओं में नारी-चरित्र की उद्भावना' या 'रीतिकालीन काव्य का सौन्दर्यशास्त्र' जैसा कोई 'टापिक' दे देंगे। 'सर' अक्सर मुझे 'यू आर ए वेरी इण्टेलीजेण्ट गर्ल' कहा करते हैं।'

'ये हिन्दी के टीचर काम्प्लेक्स से ग्रस्त रहते हैं और हिन्दी पढ़ाते हुए अंग्रेजी में 'कमेंट्स' देते हैं।'

कह तो गया, लेकिन उसे लगा, कहीं बीना को बुरा न लग जाए। उसने बात को सम्भालने की कोशिश की, 'इतना जरूर है, हिन्दी कुछ अपने-आप में ही आदर्शवादी किस्म की चीज है। मैंने पिता जी के कहने पर 'इकनामिक्स' ली थी। उनका इरादा मुझे 'इण्डियन रेवेन्यू सर्विस' में भेजने का था। लेकिन अब तो 'कम्पीटीशन' में बैठने के लिए 'ओवरएज' आड़े आ चुकी है।' उसने हँसने की कोशिश की, 'हालाँकि हिन्दी मेरी बहुत अच्छी नहीं है, लेकिन मुझे थोड़ा-बहुत कविता-कहानी लिखने का भी शौक है। मैं अगली बार कभी तुम्हें दिखाऊँगा। तुम्हारे वो जो गोलमटोल-से 'सर' हैं, पिछले हफ्ते के किसी 'पीरियाडिकल' में उनका फोटो मैंने देखा था...!'

'हमारे 'सर' हिन्दी के बहुत प्रसिद्ध कवियों में से हैं। मैं तुमको किसी दिन उनकी साहित्यिक संस्था 'काव्यलोक' की गोष्ठी में ले जाऊँगी। उनका काव्य-पाठ करने का ढंग...'

'कम उम्र की लड़कियाँ अपने पिता और टीचरों के प्रति बहुत भावुक किस्म की होती हैं।' वह पहले धीमे-से हँसा। फिर उसने एक छोटा-सा ठहाका लगाया। लड़की के चेहरे पर किसी तरह की प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी। यह लड़की वास्तव में एक संक्षिप्त-सी पवित्रता है।

शातिर किस्म की लड़कियों के चेहरे इतने अबोध किस्म के नहीं होते हैं।

'तुम स्वयं अपने-आप में एक कविता हो। शायद, शेक्सपियर या गेटे ने अपनी किसी कविता में कहा है कि 'स्त्री एक कविता है, जिसे परमात्मा ने लिखा है।' मैंने, बाद के दिनों में इस बात पर सोचने की बहुत कोशिश की है कि आखिर वह कौन-सी चीज है औरत में, जो हमें एकाएक बदल डालती है। इन छुट्टियों में भी मैं हर साल की तरह घर गया और कुछ यात्राएँ भी कीं।...लेकिन तुम्हें यह बताना मुझे सचमुच अत्यन्त भावुकतापूर्ण लग रहा है कि तुम्हारे साथ बिताये हुए क्षणों के अलावा मैं कहीं नहीं जा सका, कोई यात्रा नहीं कर सका। मैं आज तुम्हें बताने की कोशिश करना चाहता हूँ कि औरत का प्यार एक चीज है और उसका अस्तित्व की शर्त बन जाना दूसरी चीज!'

अपनी बात पूरी करते हुए उसे एक गरिमा का-सा अहसास हुआ। इस बार उसे लगा, वह सामान्यता से किसी ऊँचाई पर पहुँच गया है। आज वह इसे छेड़ते हुए लम्बी साँसें भरने-जैसी क्रियाओं से बचकर, इसे अपने प्यार, अपनी कल्पनाओं की उन ऊँचाइयों पर ले जाने की कोशिश करेगा, जहाँ से यह लड़की, शायद, फिर कभी वापस नहीं लौट सके। हालाँकि डर इस बात का भी हो सकता है कि प्यार की गम्भीरता और ऊँचाइयों को लेकर इस लड़की ने खुद कुछ भी न सोचा हो और सिर्फ अपनी किशोरावस्था की भावुकताओं में ही यह उसके साथ एक नितान्त स्वाभाविक ढंग से इतना घुल-मिल गई हो, किसी पालतू पशु की तरह? और हो सकता है, प्यार का अर्थ इसके लिए 'यूनिवर्सिटी' में पढ़ने के दिनों की उन मित्रताओं से ज्यादा कुछ न

हो, जिन्हें पढ़ी-लिखी लड़कियाँ अपने विवाहित जीवन में भूले-बिसरे चित्रों की तरह टाँगे रहती हैं।

लेकिन जो-कुछ भी हो, अब वह छूने-छेड़ने-जैसी एक-दूसरे से अलग होते ही अमूर्त हो जाने वाली स्थितियों में नहीं रहना चाहता। उसके-जैसे नैतिक स्वभाव के व्यक्ति के लिए यह कठिन ही नहीं, अशोभनीय भी हो सकता है कि वह उस लड़की से शारीरिक सम्पर्क को उस हद तक की आशा करे, जहाँ पर से लड़की सामान्यतया पत्नी में बदल जाती है।

यह आम के पेड़ों के बीच का एक छोटा-सा मैदान था। वे दोनों बैठ चुके थे। दोपहर ढल चुकने पर उमस कम हो चुकी थी और पिछले हफ्ते की बारिश के बाद की ताजगी हरी दूब में अभी तक बनी हुई थी।

उधर दूर तक दृष्टि डालने पर मिलिट्री-बैरकों की कतारें दिखाई देती हैं। थोड़ा-सा गौर से देखने पर मोटे-मोटे तारों की जालिओं से बने बाड़े और उनके बीच में टहलते हुए सन्तरी भी दिखाई दे जाते हैं। पाकिस्तानी युद्ध-बन्दियों की उपस्थिति इन बाड़ों के पार से हवा की तरह बहती हुई-सी आती है। उसे याद आया, जब वह कल लखनऊ से बस में आया था, तो खिड़की में से शाम की नमाज में झुकी हुई कतारें साफ-साफ दिख रही थीं। उनकी शान्त, करुणा में डूबी हुई-सी मुद्राएँ देखने पर उसे एकाएक अनुभव हुआ था कि जिस जमीन पर इनके घुटने खुदा की इबादत में झुके हुए हैं, यह न हिन्दुस्तान की हो सकती है, न पाकिस्तान की।

उसका मन हुआ कि इस बात का जिक्र बीना से करे। अपनी प्रेमिकाओं से इस तरह के करुण और आदर्शवादी किस्म के प्रसंगों पर

बातचीत करना उन्हें अपनी संवेदनशीलता और अच्छाइयों से परिचित करा सकने की दिशा में कारगर होता है।

'इन युद्धबन्दियों में बहुत-से ऐसे भी होंगे, जिनकी प्रेमिकाएँ और मंगेतरें पाकिस्तान में होंगी...!'--उसने कहा।

'पाकिस्तान में ही क्यों, बांगला देश में भी हो सकती हैं!' इस—बार वह काफी स्पष्ट शब्दों में बोल रही थी, 'मुझे तो उन 'वार-प्रिज-नर्स' पर ज्यादा दया आती है, जिन बेचारों की पत्नियाँ और बच्चे रात-दिन इनके इन्तजार में रहते होंगे!'

उसने देखा, वह काफी संजोदा हो गई थी। ये लड़कियाँ शुरू से ही इतनी वात्सल्यपूर्ण क्यों हो जाती हैं? हो सकता है, यह रो भी पड़े। उसे याद आया, पिछले अप्रैल में वे दोनों पहली बार एक फिल्म देखने गए थे। दरअसल उसको शरीर से स्पर्श करने की शुरूआत वहीं से हुई थी। फिल्म में जहाँ-जहाँ कामोत्तेजक किस्म के दृश्य आते-जाते थे, वह उसके शरीर को अपनी अंगुलियों में भर लेने की कोशिशें करता था। वह दरअसल अपने-आप में विस्मृत और फिल्म की तरफ से उदा-सीन-सा था कि तभी उसे निहायत धीमी सिसकी सुनाई दी थी और उसने पाया था कि वह रो रही है और पर्दे पर बच्चे की मृत्यु पर माँ के कारुणिक रुदन का दृश्य चल रहा है!

'हिन्दुस्तान की लड़कियाँ बच्चों के प्रति बहुत 'टची' किस्म की होती हैं।' उसने मजाक करने की कोशिश की, 'इस देश की आबादी जो धीरे-धीरे ट्रेजेडी की हद तक बढ़ती जा रही है...'

'इसका श्रेय पुरुषों को भी उतना ही है। औरतें कोई पेड़ तो हैं नहीं, जो अपने-आप फलती हों?'

वह खिलखिला कर हंस रही थी और वह हैरत में था।

'कभी-कभी तुम अचानक बहुत इण्टेलिजेण्ट किस्म की बातें कर जाती हो।'

वह अब ठीक-ठीक कह नहीं सकता कि उसे अपना निर्णय याद था या नहीं, लेकिन उसे धीमे-से भींच लेने के बाद उसने अपने-आपको काफी आत्मीय होता हुआ पाया। उसने यह देखने की कोशिश की कि शारीरिक रूप से उसमें कुछ अन्तर आया है, अथवा नहीं।

उसने लड़की की ओर बड़ी अजीब-सी चुभती निगाहों से देखा, वह 'धत्' की-सी मुद्रा में से अभी उबर नहीं पाई थी। उसने तय किया, अब वह सन्तुलन रखेगा।

'दरअसल शुरूआत कुछ ऐसे ढंग से हुई थी, जैसे हम लोग नदी में उतर रहे हों। और अब मैं महसूस कर रहा हूँ कि प्रेम एक यात्रा है, जिसमें से वापस लौट आने की कल्पना भी नहीं की जा सकती।'

अब वह फिर चुपचाप सुन रही थी।

'मेरे सामने चिरंजीत दुबे वाली मिसाल है। मैं जानता हूँ, वह काफी 'सिंसियर' किस्म का लड़का था। मैं नहीं कहता कि लड़कियों में सचाई या 'डिवोशन' का बिल्कुल अभाव होता है। मेरा खयाल है लड़कियाँ, बाद में या तो अपने माँ-बाप को 'फेस' नहीं कर पाती हैं या ज्यादा बेहतर भविष्य की आशाएँ उन पर हावी हो जाती हैं। लड़कियों के लिए, शायद, यह कल्पना करना कठिन होता है कि इस तरह के विश्वासघातों का किसी पुरुष की जिन्दगी पर क्या प्रभाव पड़ता है। शायद, मुझे इस तरह की बातें नहीं करनी चाहिए। तुम सोच रही होगी, लौटते ही शिकायतें लेकर बैठ गया हूँ। मैं इस खूबसूरत शाम

को खराब करना नहीं चाहता। दरअसल मैं आने वाले दिनों को ज्यादा बेहतर बनाना चाहता हूँ।...'

'कभी-कभी तुम बुजुर्गों की तरह बोलने लगते हो।'

लड़की अब दूब के तिनके टूँगने लगी थी।

वह खुद ही अनुभव कर रहा था कि हर बार वह अपनी बात को सूक्तियों की तरह इस लड़की के सामने फैलाने की कोशिश करता है और उसका गला थोड़ा-सा खुश्क हो जाता है। लड़की अपने संक्षिप्त और असम्पृक्त किस्म के वाक्यों से उसे और भी ज्यादा असुविधा-जनक स्थितियों में डाल दे रही थी। उसने धीमे-से लड़की के मुड़े हुए घुटने पर हाथ रखा। उसके चेहरे पर कोई परिवर्त्तन नहीं दिख रहा था। इस उम्र में इन लड़कियों के चेहरे पर एक खास किस्म की यथाव-तता पसरी रहती है और इनकी इस अभेद्यता का कुछ किया नहीं जा सकता। वह उस पर उजबकपन या किसी और हीनतर किस्म का प्रभाव नहीं पड़ने देना चाहता था। अन्यथा वह उसके साथ बहुत शरारतपूर्ण मजाक करता और उसे बताता कि 'तुम्हारी उम्र में लड़कियाँ पत्नी बनने से पहले के बचकानेपन से भरी हुई रहती हैं और सिर्फ आवारा किस्म के लड़कों के लिए मुफीद होती हैं।'

'हालाँकि पी. एम. पी. में मुझे दो साल से ज्यादा नहीं हुए हैं, लेकिन तुम जानती हो, मैं बहुत 'एम्बीशस' किस्म का आदमी हूँ। फिर भी मैं तुम्हारे 'फाइनल' तक यह सर्विस नहीं छोड़ूँगा, क्योंकि हमारे पिता जी बहुत 'सोर्सफुल' किस्म के प्राणी हैं और वह तुरन्त मुझे सीतापुर वापस बुला लेंगे। हो सकता है, वह मुझसे अब पी. सी. एस. में बैठने के लिए कहें। तुम कुछ ऊब रही होगी, लेकिन मैं इस चीज को तय कर लेना चाहता हूँ कि आखिर हमारे सम्बन्धों का आखिरी हश्र क्या होना चाहिए?'

उसका स्वास्थ्य काफी अच्छा है, नहीं तो शायद, वह हाँफने लगता। वह खुद अभी असमंजस में ही था कि सम्बन्धों के अन्तिम हश्र को लेकर, उसकी अपनी अपेक्षाएँ क्या हैं।

'मैं इस तरह के मौसमी-सम्बन्धों पर विश्वास नहीं करता हूँ कि साल-दो साल किसी से दोस्ती रखी और फिर उसे किसी पढ़ी हुई किताब की तरह एक तरफ रख दिया। मैं सोचता हूँ, इस तरह की गैर-जिम्मेदारी में रहना अपने-आप को ही धोखा देना है। आज मैं काफी दिनों के बाद यूनिवर्सिटी-कैम्पस में गया था, ताकि तुमसे मुलाकात हो सके। बीनू, मैं तुम्हें बता नहीं सकता कि लगभग डेढ़ घण्टे के इन्तजार में ही मैं कितना उदास हो गया। इस तरह की स्थिति मेरे लिए सुखद नहीं हो सकती है। मेरा खयाल है, कम उम्र की लड़कियाँ अपने-आप को 'सीरियसली' नहीं लेती हैं। उनके लिए, प्यार-जैसी चीज, शायद, सिर्फ एक खेल है। खास तौर पर यूनिवर्सिटी-कैम्पस की हवा में लड़कियाँ तितलियाँ बन जाती हैं।...'

'और लड़के? खैर, तुमने तो फाइनल सेवण्टी में ही दिया था। हो सकता है, तुम्हारी याददाश्त काफी कमजोर हो और तुम्हें उन दिनों की स्मृतियाँ रह नहीं गई हों।...'पार्ट वन' मेरा बहुत अच्छा नहीं गया है। 'सर' कह रहे थे कि अगर 'फर्स्ट क्लास' लाना है, तो मुझे इस साल जम कर 'स्टडी' करनी होगी।'

यह लड़की लगातार अप्रासंगिक हो जाती है और शायद, बेवकूफी की हद तक लापरवाह है। उसे हल्की-सी खीझ हुई, हालांकि यह उदारता तो उसे बरतनी ही होगी कि इस लड़की की उपस्थिति को चुपचाप सहे और अपने अनुकूल बनाने की कोशिश करे। इस वक्त

कुछ परेशानी हो सकती है, लेकिन पत्नी बन जाने के बाद इन लड़कियों में अपने-आप परिवर्तन आ जाता है और ये सुगम हो जाती हैं। इनकी इस किस्म की कठिनता, जिससे इस वक्त उसका साबका पड़ा हुआ है, अपने-आप समाप्त हो जाती है।

कहने को तो वह सीधे-सीधे यह भी कह सकता है कि शादी से नीचे की किसी भी तरह की स्थिति उसे स्वीकार नहीं है। और कदाचित् यह लड़की इतनी कम-उम्र न हो कर, बीस से ऊपर की होती, तो वार्तालाप में इस तरह की बाधाएँ उत्पन्न ही नहीं होतीं। एक अजीब किस्म की अल्हड़ता है, जो इस लड़की को निर्द्वन्द्व और प्रफुल्ल बनाये हुए है और हालांकि यह बहुत मोहक और किंचित उत्तेजक किस्म की अल्हड़ता है और इसमें आनन्द अत्यन्त सुलभ हो सकता है, लेकिन इतना तय है कि किसी सर्वथा एकान्त या उसके कमरे में समय बिताने को यह कदापि तैयार नहीं होगी और आज भी यही होगा। उसके अस्तित्व का एक अच्छा-खासा हिस्सा हवा में टँगा रह जाएगा।

वह उसे बताना चाहता था कि सिर्फ स्पर्श की स्थितियों से गुजरना उसके लिए अंततः बहुत असुविधाजनक हो जाता है, लेकिन इस बात की सम्भावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि लड़की इसका गलत अर्थ ले ले। देखा जाए, तो इस उम्र में ये लड़कियाँ वायवीय किस्म के प्यार में जितनी उतावली और उत्फुल होती हैं, शारीरिक रूप से उतना ही अधिक सावधान। इनकी इस सावधानी को जीतना ही सब से कठिन समस्या है।

इस बार वह पहले की अपेक्षा प्रसन्न हो गया। उसने, बहुत गहरी आत्मीयता के साथ, उसके हाथ को अपने घुटने पर रख लिया और सिर्फ धीमे-धीमे मुसकराता रहा।

'तुम्हारी उम्र मुश्किल से सत्रह-अठारह वर्ष होगी ?' थोड़ा-सा अन्तराल दे कर, उसने फिर निर्णय पर पहुँचने की कोशिश प्रारम्भ कर दी।

'नहीं, बी. ए. फाइल मैंने सेवन्टी-वन में दिया था। मैं समझती हूँ, इसी महीने से मुझे उन्नीसवाँ लग चुका होगा।'

एकाएक और काफी प्रासंगिक तरीके से शादी की बात छिड़ जाने की प्रसन्नता में से फिसल कर, वह एकाएक जैसे घुटनों के बल जमीन पर गिर पड़ा। उसने सँभलने की कोशिश की और इसी में खिसिया गया।

अब उसने अपना ध्यान कुछ देर के लिए हरी, मुलायम दूब पर केन्द्रित कर दिया। लड़की पूर्ववत काफी मजे में दूब टूंग रही थी। इन लड़कियों में एक खास किस्म की पशुता होती है, उसने अनुभव किया और अवसाद से भर गया।

'माँ की मृत्यु के बाद से तुम अक्सर उदास रहने लगे हो। बहुत स्वाभाविक भी है, मैं तो डर जाती हूँ यह सोच कर ही कि कभी मेरी ममी भी मर सकती हैं। कितना अच्छा हो अगर मम्मी से पहले मेरी 'डेथ' हो जाए !' वह तय नहीं कर पाया कि लड़की के इस तरह के भावुकता पूर्ण रवैये को वह अदा कहे या बचपना।

'तुम, बीनू, इस दूब की तरह ही हो। ताजा और मुलायम। तुम्हारी आँखें, जब भी तुम बोलती हो, निरी पारदर्शी हो आती हैं। यह मेरा सौभाग्य ही है, जो तुम-जैसी लड़की का प्यार मुझे मिला...' कहते हुए, वह उसकी तरफ झुका। शायद, वह उसे थोड़ा-सा आलिंगन में लेना चाहता था, लेकिन लड़की का खिलखिलाना उससे पार नहीं हो पाया। दूब का तिनका उसके मुँह में बहुत ही मोहक ढंग से हिल रहा

था और वह कह रही थी, 'तुम लोग, शायद, सभी इस गलतफहमी के शिकार रहते हो कि औरतों की तारीफ कर के उन्हें आसानी से बेवकूफ बनाया जा सकता है ?'

वह अब हतप्रभ था। हतप्रभ और अवसन्न! अब इस लड़की को बचकानेपन में से उबार कर, शादी-जैसे गम्भीर और निर्णयात्मक विषय पर ले आना बहुत कठिन है। क्रुद्ध होने की निरर्थकता को वह जानता है, अन्यथा नाराज हुआ जा सकता था। लेकिन, संयम रखने की कोशिश करते हुए भी, हल्की-सी खीझ उस पर हावी हो गई और हालांकि लड़की का दायाँ हाथ अब उसके कन्धे पर था, लेकिन उसे लग रहा था, जैसे वह काफी दूर हट चुका है।

थोड़ी देर सन्नाटा-सा छाया रहा। लड़की अब अपना मुंह ऊपर उठाए कभी आम के पेड़ और कभी नन्हे-नन्हे बादलों से भरे आकाश की ओर देख रही थी। शायद, इसे इस बात का अहसास ही नहीं है कि वह उससे शादी की बात तय करना चाहता है।

'मेरे फादर बहुत आधुनिक विचारों के व्यक्ति हैं। मैं अपनी शादी के सिलसिले में खुद ही निर्णय ले लूं, उन्हें इस बात से प्रसन्नता ही होगी। मेरी उम्र अब अट्ठाईस साल हो चुकी है।'

'मेरी ममी बहुत दूसरे टाइप की हैं। वो, शायद, इस बात को ज्यादा पसन्द करेंगी कि सब-कुछ हमारे मामा जो तय करें। हमारे मामा जी बहुत ही प्यारे किस्म के हैं। अभी भी राखी बंधवाने ममी के पास नियमित पहुँचते हैं और ढेर सारी बढ़िया मिठाइयां और कपड़े लेते आते हैं। इन्दौर वैसे भी काफी खूबसूरत शहर है और मेरी ननिहाल वहीं है।'

इस तरह की लड़कियों से बातें करते वक्त रसगुल्लों से भरी हाँडी अपने साथ रखनी चाहिए, ताकि ये जरा-सा मुँह खोलें, तो एक रसगुल्ला मुँह में भर दिया जाए। वह झल्ला कर रह गया था।

शायद, उन्नीस साल की उम्र में लड़कियाँ आत्मनिर्भर हो ही नहीं पाती हैं और शादी के निर्णय के लिए आत्मनिर्भरता सबसे पहली शर्त है।

'बीनू, दरअसल प्यार एक ऐसी चीज है, जो हो जाता है। नहीं तो, मैं समझता हूँ, मेरा सम्बन्ध किसी तेईस-चौबीस साल की लड़की से होना चाहिए था। 'अरेंज्ड मैरेज' में कम उम्र कोई रुकावट नहीं होती, लेकिन जहां शादी के मसले पर खुद ही निर्णय लेना हो....मुझे अब गहराई से यह महसूस हो रहा है कि तुम अभी इतनी कम-उम्र और लापरवाह हो कि अपनी बातें मैं तुम्हें समझा नहीं पाऊंगा।' अपनी बात पूरी करते-करते वह काफी हताश हो गया। वह फिर भी यह निर्णय नहीं ले पाया था कि इस लड़की के साथ यही 'टिट्‌बिट्' किस्म की दोस्ती बनाए रखे या पूरी तरह किनारा कर ले।

अब हतप्रभता उस पर इतनी हावी हो गई थी कि लड़की को आलिंगन-बद्ध करने लायक एकान्त की उस के लिए कोई सार्थकता रह नहीं गई थी। अब वह वापस चल देना चाहता था। यह स्थिति काफी शर्मनाक थी। वह कहने को हुआ कि 'तुम लड़कियाँ इस उम्र में सिर्फ छू-छेड़ कर, 'टा-टा' कह देने लायक होती हो। तुम लोगों से गम्भीरतापूर्वक कोई बात ही नहीं की जा सकती।'

लेकिन उसने कुछ कहना व्यर्थ समझा। मुसकरा देने की कोशिश में, वह सिर्फ थोड़ा-सा खिसिया कर रह गया।

लड़की अब भी दूब टूंग रही थी और अब उसने अपना सिर इस के कन्धे पर रख दिया था। उस के भीतर एक दार्शनिक मुद्रा उभरने को हुई कि 'तुम्हारी यह अभद्रता और बचकानापन मुझे चीख उठने को लाचार कर देंगे, बानू !' लेकिन वह सिर्फ बदहवास हो कर-रह गया।

उसने धीमे-से अब मुँह अपने कन्धे पर टिके उसके चेहरे की तरफ घुमाया और, बावजूद अपनी सारी खिन्नता के, अपने होंठों को रोक नहीं पाया। उसे लगा, वह लाचारगी में डूब गया है।

'कभी-कभी तुम ऐसी हरकतें करते हो। जैसे किसी बच्चे की पप्पी ले रहे हो।'

'तुम एक उन्नीस साल की बच्ची ही तो हो ?' कहते हुए,उसे लगा, यह कह कर, उसे काफी राहत मिली है।

'तुम्हें, शायद, मालूम नहीं है।' लड़की अपना मुंह उसके कान से सटाते हुए बोली, 'मेरी उम्र में अमी दो बच्चों की माँ बन चुकी थीं !'

अपनी बात कह कर, लड़की उठ खड़ी हुई थी और खिलखिलाती हुई, कभी आम के पेड़ों की तरफ, कभी बादलों से भरे आकाश की ओर देख रही थी। उसका हल्के गुलाबी रंग का दुपट्टा, हवा में उड़ती हुई बतख की तरह फैल गया था और गहरे लाल रंग के कुर्ते तथा काले रंग के बेल-बाटम में वह अच्छी-खासी खूबसूरत लग रही थी।

वह समझ नहीं पाया कि वह लड़की की प्रफुल्लता और खूबसूरती का दबाव महसूस कर रहा है, या अपनी अनुभवहीनता का। वह यकायक यह तय नहीं कर पा रहा था कि उसे इसी वक्त वापस चल देना चाहिए या कि थोड़ी देर इस लड़की के साथ और बातचीत की जाए।

चुके थे और फिर वही उतरने और चढ़ने वालों में जोर-आजमाई की कशमकश शुरू हो गई थी।

कण्डक्टर तटस्थ भाव से अपनी जगह पर तमाशबीनों की-सी मुद्रा में खड़ा था और जिन्हें उतरना नहीं था, वो भीड़ में मिंचे हुए उमस की बेचैनी में खीझ रहे थे।

'क्यों भई, कण्डक्टर, बस चलवा क्यों नहीं रहे हो ?' खिड़की के पास बैठे एक सज्जन खीझ को रोक नहीं पा रहे थे—"दिल्ली के बसों के कण्डक्टर तो साहब, सिनेमा-हॉल के गेटकीपरों से भी गये-बीते होते हैं...।"

'आप, भाई साहब, माफ़ कीजियेगा, कभी किसी सिनेमाहॉल में गेटकीपरी कर चुके हैं क्या ?'—कण्डक्टर सिर्फ़ थोड़ा-सा आगे को झुक गया और जब तक वो सज्जन कुछ जवाब दें, वह कहता गया—'मैनेजर होते, तो टैक्सी में जाते !'

'तुम लोग पब्लिक की परेशानियों को तो समझते नहीं हो और उलटे जरा-सी बात का बुरा मान जाते हो...यहाँ साली उमस के मारे हलक़ सूख रहा है..."

'हिन्दुस्तान की पब्लिक की परेशानियाँ पंडत मोतीलाल नेहरू की बहू भी दूर नहीं कर पाईं, भाईजान, हमारे-जैसे मामूली लोगों की बिसात क्या है ? और फिर आपने जो उमस साली का जिक्र किया—बस में कर लिया, कोई हर्ज नहीं, घर में न कर बैठिएगा ! साली का रिश्ता—खास तौर पर हमारे गुड़गाँवा जिले में—काफी नाजुक माना जाता है ! और रही बात उमस और परेशानी की बात, भाई साहब ! यहाँ तो सबसे ज्यादा वही चिल्लाता है, जो, सबसे आराम से बैठा हो।'

'तो क्या सीट पर से उठ जाऊँ ? तस्मा पकड़ कर खड़ा हो जाऊँ ?' परेशान सज्जन खीझ और विक्षुब्धता में धनुषाकार होते हुए दिखाई देने लगे थे।

'अजी साहब, खड़े रहें आपके दुश्मन ! पंदरा पैसे का टिकट आपने खरीदा है, कोई खैरात में थोड़े ही बैठे हैं, आप पैसेंजर हैं, इस बस के असली मालिक आप हैं। हम कण्डक्टर हैं, आपके सेवक हैं। आपने पंदरा पैसे का टिकट न खरीदा होता, श्रीमान् जी, तो बंदे के घर की एक रोटी कम हो जाती। आप तो हमारे अन्नदाता हैं—अजी, हमारी ही क्या, इस ससुरी पूरी डी० टी० यू० कम्पनी की रोजी-रोटी आपके दम से है। आपको खड़ा करने की जुर्रत हममें कहाँ ? हमारी तो, हज़ूर, सिर्फ़ इतनी-सी अरज है कि आजादी सबसे पहले इसी दिल्ली में आई और तिरंगा झंडा सबसे पहले इसी लाल किले में हिलाया गया था, जिसे आप लोग अभी-अभी पीछे छोड़ आए हैं। यहाँ उतरने वालों को उतरने और चढ़ने वालों को चढ़ने की आजादी है।...हाँ, साहिबान, आगे वाले मिहरबानी करके थोड़ा-थोड़ा आगे को बढ़ जाएँ। आगे बारिश हो रही हो, तो बतायें, छतरियों का इन्तजाम करवा दिया जाएगा। हाँ, डण्डों पर लटके हुए लोग मजबूती से डण्डों को पकड़ लें। जिन साहबान का जीवन बीमा किया हुआ हो और किश्तें वक्त से भरी हों, पालिसी सही-सलामत है, उनको मना करके घाटे में नहीं डालूँगा।' कहते हुए, वह सीटी देने ही जा रहा था कि सामने की तरफ से आती हुई एक महिला भी पायदान पर खड़े लोगों में शामिल हो गई।

'बहन जी, नीचे उतर जाइए।'—कहते हुए, वह नीचे की ओर झुका, तो देखा, बस को रुकी हुई देखकर, 'स्टॉपेज' पर खड़ी भीड़ भी बाढ़ की तरह इसी ओर आ रही है और उसने तड़ाक से लम्बी सीटी

दाग दी। बस झटके के साथ आगे बढ़ी, तो महिला ने अपने को कुछ डगमगाता हुआ-सा पाया। कण्डक्टर के मुँह में सीटी अभी ज्यों-की-ज्यों दबी हुई थी। उसने बायाँ हाथ आगे फैलाकर, महिला को सँभालने की कोशिश की। उसके चेहरे पर किसी पर्वतारोही की और स्वयंसेवक की कर्त्तव्यपरायणता का समान सन्तुलन दिखाई दे रहा था, हालाँकि महिला अब सुरक्षित हो चुकने के बाद की स्त्री-सुलभ सावधानी में वापस लौट रही थी और कण्डक्टर की पसीने से भरी हुई हथेली का दबाव, शायद, थोड़ी-सी असुविधा उत्पन्न कर रहा था।

दिल्ली गेट वाले स्टॉपेज तक कण्डक्टर के लिये, स्थिति यथावत् बनी रही और कमर में पड़ा रहा पसीने से पसीजो हुई त्वचा में महिला की उसकी खुरदरी उंगुलियाँ गड़ती हुई-सी लग रही थीं और वह पसीने से भी जयादा असुविधा इस बात से अनुभव कर रही थी कि लगातार यही महसूस हो रहा था, लोगों की आँखें उसकी कमर और कण्डक्टर के हाथ वाले हिस्से पर टार्च की तरह रोशनी डाल रही हैं। उतरने वालों के दबाव में डण्डे पर से उसका दायाँ हाथ छूट गया था और बायाँ इस तरह दबा हुआ था कि उसे हिला भी नहीं पा रही थी। पूरा शरीर सिर्फ पायदान के किनारे टिके हुए पाँवों और कण्डक्टर की बाँह के सहारे झूल रहा था। वह काफी परेशान थी और उतर जाना चाहती थी, लेकिन कण्डक्टर का चेहरा अब ओट में होगया था उसे दीख नहीं रहा था नीचे झुके हुए लोगों के कारण और वह समझ नहीं पा रही थी कि कमर में से हाथ हटा लेने के लिये वह आखिर कहे किसे? दरअसल भीड़ का दबाव इतना था कि अंतिम रूप से यह तय कर पाना भी कठिन था कि सहारा देने वाला हाथ कण्डक्टर का ही है। और जहाँ इस बात से वह काफ़ी अप्रियता महसूस कर रही थी कि न-जाने किसका हाथ उसकी कमर को चाँपे हुए है, वहीं इस बात का अहसास भी बना हुआ था कि अगर यह हाथ का सहारा नहीं मिला होता, तो

हो सकता है कि दरियागंज और दिल्ली गेट के बीच ही कहीं गिर चुकी होती। दिल्ली में इस तरह की घटनाएँ आमतौर पर होती रहती थीं और लोगों में बसों के नम्बर लिख लेने अथवा रिपोर्ट करने में कोई दिलचस्पी नहीं थी। शिकायतों की किताब में प्रायः कुछ पन्ने ड्राइवर-कण्डक्टर को अपने जान-पहचान वालों से खुद ही लिखवा लेने होते थे, ताकि खाना-पूरी में कमी न रह जाए।

लीग सीज़न का फुटबाल मैच चल रहा था कि किसी विदेशी टीम के साथ दिल्ली एकादश का मुकाबला था, दिल्ली गेट पर काफ़ी लोग उतर गये थे और महिला ने अनुभव किया कि अगर कमर में हाथ नहीं पड़ा होता, तो शायद वह ऊपर पहुँच जाती। तभी लम्बी सीटी बजी और आई० टी० ओ० तक महिला को फिर पूववत रहना पड़ा। वह तय नहीं कर पा रही थी कि कमर में हाथ डाले हुए व्यक्ति की कितनी सद्भावना उसे गिर पड़ने से रोकने मे होगी और कितनी रुचि कमर में हाथ डाले रहने में। हाथ पुरुष का ही है, इतना तो निश्चित था। महिलाओं में किसी को गिर पड़ने से बचा लेने की प्रवृत्ति ही हो, लेकिन न उनमें इस तरह की शक्ति होती है, न धैर्य और न अनुराग।

आई० टी० ओ० से महिला को ऊपर निकल आने की सुविधा मिली और देखा कि उसकी कमर में किसी यात्री का नहीं, बल्कि कण्डक्टर का हाथ पड़ा हुआ है। उसने काफ़ी तीखी नज़र से उसकी ओर देखा, लेकिन कण्डक्टर के चेहरे पर उसे कोई प्रतिक्रिया नहीं दिखाई दी। अपना हाथ कमर से हटाकर, अब उसने महिला के कंधे पर रख दिया था—'आगे बढ़ जाइए, बहन जी! थोड़ा आप भी आगे निकल चलिए।'

"बदतमीज..."

वह खुद नहीं समझ पाई थी कि यह निहायत छोटा-सा किंतु अच्छा-खासा आक्रामक किस्म का शब्द एकाएक कहाँ से उसकी जीभ की नोक पर आ गया ।

"क्या कहा, बहनजी, जरा एक बार फिर से कहना...बाकी लोगों ने आपकी मधुर वाणी, शायद, ठीक से सुनी ना हो ?" कण्डक्टर का चेहरा क्रुद्धता में सख्त और काफ़ी व्यंगपूर्ण हो आया था ।

वह लगभग तीस-बत्तीस साल का खुरदुरे किस्म का युवक ग्रामीण था, लेकिन उसके चेहरे और आँखों में स्फूर्ति थी । वह चेहरे से ही बातून लगता था और उसकी मूँछें काफी घनी थीं । वह अच्छे-खासे कद का था और उसके चेहरे पर चेचक के छींटेदार चकत्ते थे । वह स्वाभिमानी दिख रहा था और उसकी आवाज़ में एक खास किस्म का तेवर था ।

महिला गुस्से और असमंजस में कुछ कह नहीं पाई और सिर्फ़ हिकारत-भरी आँखों से उसे घूरती रह गई । वह पहले ही काफ़ी परेशान थी और अब जिस तरह लगभग आस-पास के सभी लोगों की आँखें उस पर केन्द्रित हो चुकी थीं, वह अपने-आपको असन्तुलित अनुभव करने लगी थी ।

उसे लग रहा था, उसके चेहरे पर की त्वचा ऊँट के थूथने की तरह बलबला रही है और उसमें से हो सकता है, बदतमीज़ से भी ज्यादा कठोर शब्द बाहर निकल आए । जिस तरह की आकस्मिकता में वह उलझ गई थी, इसके पीछे सिर्फ़ बस पकड़ लेने की जल्दबाजी के बाद की घटना ही नहीं होनी चाहिए । इस तरह के आकस्मिक क्षणों में आदमी के भीतर की तमाम परेशानियाँ अपना दबाव बनाये रहती

हैं, लेकिन उसके अंदरूनी द्वन्द्व से दूसरे लोगों को कोई सरोकार नहीं होता।

सामान्य स्थिति में वह, शायद, 'बदतमीज' कहने की जगह, सिर्फ़ तीखेपन के साथ घूर कर देख लेती और आगे बढ़ जाती। अभी तो यह भी स्पष्ट नहीं था कि कर्त्तव्यपरायणता से अलग क़िस्म की रुचि कण्डक्टर ने उसमें ली थी।

वह स्थिति को बचा लेने के लिये आगे बढ़ने की चेष्टा करना ही चाहती थी कि तभी सामने खड़े सज्जन ने कण्डक्टर से कहा—"कण्डक्टर साहब, जरा दो टिकट जंगपुरे के देना..."

"अजी देता हूँ, साहब, आप लोगों को भी टिकट देता हूँ। पहले जरा बहन जी से अपना 'करेक्टर-सर्टिफिकेट' तो ले लूँ।"—वह लगातार उसे घूर रहा था और इस बार हँस भी दिया था, लेकिन उसका हँसना और अधिक विक्षुब्ध करने वाला था। उसने हड़बड़ी में अपना हाथ अगली सीट पर ठीक से जमाने की कोशिश की ही थी कि वहाँ से एक सरदार जी का चेहरा ऊपर को उठ आया—'भैण जी, जरा मेरी पगड़ी नूं बख्श देना..."

आस-पास से हँसी के बुलबुले-से उठते चले गये और उन्हीं के बीच में कंडक्टर की आवाज़ भी गड्ड-मड्ड होकर रह गई कि 'अजी, ये आजकल की औरतें तो सिर्फ़ पगड़ी उछालना जानती हैं..'

उसे लग रहा था, वह लोगों के बीच में घिर गई है। अपने-आपको उसने अकेली पड़ती हुई-सा अनुभव किया और तीखी आवाज़ में बोली—"किसी अकेली औरत को परेशान देखते ही आप लोग बेशर्मों की तरह ही-ही करने लगते हैं...शर्म नहीं आती है आप लोगों को।"

एक क्षण को सन्नाटा छा गया और कुछ लोगों के चेहरों पर थोड़ी झेंप भी उभर आई, लेकिन कंडक्टर इस सबसे बिल्कुल अप्रभावित रहा और मज़ाक करता हुआ बोला—"बहन जी, माफ़ करना, यह शरम ससुरी दिल्ली शहर को रास आई नहीं। शरणार्थी आ के यहाँ बस गये, मगर यह शरम बेचारी अभी भी दर-दर की ठोकरें खाती घूम रही है।...हाँजी, भाई साहब, आपने दो टिकट कहाँ के माँगे थे? जंगपुरे के? ये लेना जी, और जरा मेहरबानी करके खुली रेजगारी देना। शरम तो ससुरी इस दिल्ली शहर से पहले ही गायब थी, अब रेजगारी के दर्शन भी दुर्लभ हो गये...शर्म वालों के दर्शन तो फिर भी कभी-न-कभी हो ही जाते हैं।"

कण्डक्टर के स्वर में अब चुहलबाजी आ गई थी और वह पहले की अपेक्षा उत्साह में आ गया था। जंगपुरे के टिकट देकर, वह फिर इस ओर मुड़ गया--"हाँजी, बहन जी, आपको कहाँ तक का दूँ...?"

महिला समझ गई कि अब यह कण्डक्टर शरारत पर उतर आया है। यह उन दिनों की बात है, जब डी० टी० यू० डी० टी० सी० में नहीं बदली थी और दिल्ली की बसों में यात्रा करना वास्तव में सफर करना था।

दिल्ली की बसों के अधिकांश कण्डक्टर आस-पास के ग्रामीण इलाकों के और मनमौजी किस्म के हैं और इनकी भाषा सिर्फ़ मुहावरेदार ही नहीं, चुटीली भी होती है। अक्सर ये लोग यात्रियों का अच्छा-खासा मनोरंजन करते चलते हैं और महिलाओं से बात करते हुए, इस तरह के दोहरे अर्थों वाली शब्दावली प्रयोग में लाते हैं कि लोगों की शरारतपूर्ण मुस्कुराहटें सारी बस में मिनमिनाती हुई मक्खियों की तरह फैल जाती हैं और महिलाओं के चेहरों पर बैठने लगती हैं। हाजिर-

जवाबी के कुछ इस तरह के लटके ये इस्तेमाल करते हैं कि महिलाओं को भीतर-ही-भीतर खिसिया कर रह जाना होता है। कभी-कभी आस-पास के गाँवों से शहर घूमने आई हुई औरतें बैठी होती हैं, तो उनके और कण्डक्टर के बीच लगभग नौटंकियों के से संवाद चलने लगते हैं।

महिला ने तय कर लिया, अब चुप लगा जाना ही अच्छा है। उसने कोशिश की कि पर्स में से पैसे निकाल कर, कण्डक्टर को दे दे, लेकिन एक तो उसके पास रेजगारी नहीं थी और दूसरे बस की तेज रफ्तार में उसके लिये यह सम्भव नहीं हो पा रहा था कि पर्स को संतुलित करके, नोट बाहर निकाल सके।

"अरे, बहनजी, आपको जाना कहाँ है? पैसों की चिंता मत कीजिए। पैसे फिर आ जाएँगे। इस दिल्ली शहर में समुरी शरम भले ही ना रह गई हो, रुपये-पैसों का टोटा नहीं है।"

एक बार उसका मन हुआ, अगले स्टाप तक का टिकट ले ले और उतर जाए, लेकिन फिर दूसरी बस पकड़ना कितना मुश्किल होगा, यह सोचकर, कुछ निर्णय ले नहीं पाई। सरदारजी, शायद उसके परेशान चेहरे के प्रति सहानुभूति अनुभव कर रहे थे। वो उठ खड़े हुए और बोले—"भैण जी, तुसी इत्थों बैठ जाओ। जनानियाँ दे वास्ते बस दा सफ़र बड़ा तकलीफ़ देह होंदा सी..."

वह 'धन्यवाद' कहती हुई सरदार जी के उठने से खाली होती हुई सीट से टिकी ही थी कि कण्डक्टर की आवाज़ उसे फिर सुनाई दे गई—"सरदार जी ने बड़ा पुन्न का काम किया। भैण जी को बैठने की जगह मिल गई। लेकिन भाई साहब, इस हिंदुस्तान नाम के मुल्क में

तो जो बदतर हालत मर्दानों की है, उस पर जनानियों को भी आँसू बहाने पड़ते हैं। नेकी नाम की चिड़िया तो महात्मा गाँधी के कंधे पर दिखाई देती थी, अब उनके मरने के बाद राजघाट में भी नहीं दिखाई देती। यहाँ किसी की जान बचाने को कमर में हाथ लगा दो, तो अपनी जान मुसीबत में पड़ जाती है...नेकीराम बनने की कोशिश करो, तो बदीहुसैन का तखल्लुस हासिल होता है। क्यों, भाई साहब, जब कोई बस से नीचे गिरने को हो, तो हाथ लगाने वाले को मर्द-औरत की भी ठीक से पहचान नहीं रहती—जवान-बूढ़ों की कौन सोचता है ?...और फिर साहब, आदमी की बीवी जवान होती है, तो क्या उसकी बहन जवान नहीं होती ? बहन जी नीचे को गिरने वाली थीं, तो क्या इन्हें जवान देखकर गिर जाने देता ? हाँ जी, आपको कहाँ का दे दूँ..."

वह समझ गई कि यह जिद्दी किस्म का आदमी है। चुपके से एक रुपये का नोट निकालकर देती हुई, बोली—"लाजपत नगर..."

"खुले पैसे नहीं हैं, बहनजी ? अच्छा, चलिये, आपके पीछे से 'नोट' कर देता हूँ। लाजपत नगर के 'स्टॉप' पर उतरते हुए वापस ले लें।" कहते हुए, उसने तेजी से टिकट फाड़ा, पेंसिल से उसके पीछे पैंसठ पैसे लिखकर, उसकी तरफ बढ़ा दिया और खुद दूसरी तरफ घूम गया—"हाँजी, आपको कहाँ जाना है..."?

वह तिलमिलाकर रह गई और इसी कुढ़न में अपनी बगल में बैठे व्यक्ति से बोल पड़ी—'डी० टी० यू० की बसों में शायद, गुण्डों की भर्ती ज्यादा की जाती है...'

उसने तो योंही सिर्फ़ अपनी कुढ़न कम करने के लिये काफ़ी धीमे से कहा था लेकिन कण्डक्टर के कान, शायद, इसी तरफ लगे हुए

थे। वह टिकट फाड़ता हुआ ही इस ओर घूम गया। महिला थोड़ा-सा सहम गई कि अब यह और आगबूबला होकर, अनाही-तबाही बकेगा, लेकिन वह निहायत शातिर ढंग से मुस्कुराता हुआ, काफ़ी विनम्र होता हुआ-सा बोला—"डी० टी० यू० की बसों की कण्डक्टरी के लिये तो, बहन जी, अब तिहाड़ जेल का सर्टिफ़िकेट सबसे पहले देना पड़ता है!"

अपनी बात पूरी करके, वह उसकी बगल में बैठे व्यक्ति की तरफ देखता हुआ, बोला—"हाँजी, भाई साहब, आपका टिकट कट गया या नहीं? आप सवेरे किसी भले आदमी का मुँह देखकर आए होंगे, जो आपको लाल किले वाले स्टॉप पर ही यह खिड़की वाली सीट मिल गई...आजकल तो साहब, दिल्ली में बीवी मिलना ज्यादा आसान है, लेकिन बस में बैठने की जगह बड़ी तकदीर से मिलती है...हाँ जी, सुप्रीम कोर्ट...जिन साहबान के फैसले सुप्रीम कोर्ट में होने हों, वो मेहरबानी करके यहीं उतर जाएँ..."

बस के रुकते ही, फुर्ती के साथ वह दरवाजे के पास चला गया और टाँग को दीवार की तरह पायदान के पास लगाते हुए चिल्लाया—"उन्तीस नम्बर है, उन्तीस नम्बर! लाजपत नगर तक जाएगी..."

उसका हाथ अनायास ही अपने चश्मे पर चला गया। उसकी उम्र भी देखने वाले उन्तीस-तीस ही बतायेंगे। हो सकता है, यह सिर्फ़ एक संयोग हो, लेकिन उसको लगा कि कण्डक्टर का इशारा सिर्फ़ बस के नम्बर की तरफ़ ही नहीं, बल्कि उसकी ओर भी है।

"दरअसल इन लोगों के मुँह लगना नहीं चाहिए। कई लोग बहुत बदतमीज ही नहीं, गुण्डे क़िस्म के भी होते हैं। सुनवाई आजकल यूनियनों की होती है, अकेले आदमी की आवाज की कोई क़ीमत नहीं

रही।" बगल में बैठा व्यक्ति उस खिन्न और परेशान महिला को सांत्वना देने की ज़रूरत महसूस करता हुआ-सा, काफी धीमी आवाज़ में बोला। महिला को थोड़ा-सा सहारा मिला। बोली—"इन कण्ड-क्टरों का रवैया आप लोग भी देखते ही होंगे। स्टॉपेज पर बस कभी रोकेंगे नहीं। अरे, बस में ज्यादा भीड़ है, तो कम-से-कम उतने ही पैसेन्जर ले लें, जितने स्टॉपेज पर उतरें। लेकिन नहीं उतरने वालों को भी फर्लाङ्ग-भर आगे तक घसीट कर उतारेंगे !...."

"अजी, इस दिल्ली शहर में यह देखने वाला ही कौन है, कि उतरे कितने और चढ़े कितने ?" वह जितनी तेजी से दरवाजे तक गया था, उससे तेजी से फिर ऊपर लौट आया। एक क्षण रुककर, उसने लम्बी सीटी दी और बस के आगे बढ़ते ही, बोला—"दिल्ली शहर के बाशिंदे, ये बहन जी ठीक ही कह रही थीं, बेहया हो गये हैं। यहाँ के तो, साहब, जानवर आँख खोलकर चढ़ते हैं, मगर इन्सान नहीं। ये आम शिकायत हाँकी जाती है कि स्टॉपेज पर बसें नहीं रोकते हैं, कण्डक्टर-ड्राइवर। अरे, साहब, हरेक स्टाप पर लोग ऐसे चढ़ते हैं कि न चचा-ताऊ देखते हैं, न माँ-बहन और न बूढ़ा-बच्चा। पैसेन्जर को तो चढ़ना है और दस मिनट के बाद उतरना है—अब कण्डक्टर ससुरा आठ-आठ घण्टे कैसे किसी को सँभाले ?"

महिला को उसकी बातों से भद्देसपन की बदबू आती हुई-सी महसूस हुई और वह लगभग चिल्लाती हुई सी-बोली—"सारी बस में घूम-फिर कर एक यही जगह रह गई है तुमको अंट-संट बातें करने के लिये"""बदतमीज कहीं का""

बगल की सीट वाला व्यक्ति उठ खड़ा हुआ और कण्डक्टर को समझाता हुआ-सा बोला—"भई, आप लोग जानते ही हैं कि हम

पैसेंजरों को भी कितनी परेशानियां हैं। बसें ठीक से चलती हों, तो चढ़ने वाले भी सब्र से खड़े रहें। हरेक जानता है कि अगली बस का कोई ठिकाना नहीं। जो बस सामने आई, उसी को पकड़ने की कोशिश रहती है...बहनजी की नाराजी का बुरा मत मानना..."

"आप ठीक कहते हैं, भाई साहब! परेशान तो यह पूरा हिन्दुस्तान है और अगर नहीं है तो ससुरा डी० टी० यू० का कण्डक्टर, जो ड्यूटी पर से वापस लौटने तक बीवी-बच्चों के मतलब का भी नहीं रह जाता।" वह लगभग हँसता हुआ बोला—"और महाशय रह गई बुरा मानने, न मानने की बात, सो बुरा मानना चाहिये सिर्फ़ उस मौत का, जो सुई की नोक-भर खींचकर छः फीट लम्बा छोड़ जाती है।"

महिला ने अनुभव किया कि सिर्फ़ उसे छोड़कर, बाकी लगभग सभी लोग कण्डक्टर की चुहलबाजी और लच्छेदार बातों से प्रभावित हो रहे हैं। हो सकता है, बगल वाले व्यक्ति में उसके प्रति थोड़ी-सी सहानुभूति हो। हालाँकि यह भी ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता कि यह किस हद तक मानवीय सहानुभूति है और किस हद तक वह खालिस मर्दाना किस्म की दया, जो उनमें अक्सर स्त्री की मांसलता के प्रति उपजती है। बसों में सफर करते हुए, प्रायः उसने यही देखा है कि लोग जितनी आसानी से जवान और खूबसूरत औरतों के लिये सीट छोड़ते हैं, कमजोर और बूढ़ी औरतों के लिये नहीं। उसको सहसा ही यह ध्यान आया कि अभी कण्डक्टर की तरफ घूमते हुए इस सहानुभूति व्यक्त करने वाले व्यक्ति के बायें हाथ की कुहनी उसके स्तनों को स्पर्श करती हुई निकली थी। उसकी उम्र उन्तीसवें पर चल रही है। वह अपने-आपको ज्यादा खूबसूरत नहीं लगाती है। अब तक के अनुभवों ने उसे आत्ममंथन में समर्थ बनाया है और वह अब अपने-आपको सिर्फ़

इस हद तक आकर्षक मानकर चलती है कि बस में भीड़ रहे, तो आदमी उससे सटकर खड़े होने पर या उसकी बगल की सीट में बैठे रहने पर एक गोपनीय किस्म की प्रसन्नता अनुभव करे।...और दरअसल यही स्थिति उसे मानसिक उत्तेजना से भर देती है।

कण्डक्टर की अंगुलियों के स्पर्श से उसकी स्मृति मुक्त नहीं हो पा रही थी और एक स्तर पर उसे बगल की सीट पर बैठे व्यक्ति और कण्डक्टर में कोई खास अन्तर नहीं दिख रहा था। फर्क सिर्फ इतना था कि कण्डक्टर के निहायत व्यंगपूर्ण और ओछे रवैये के कारण, इस व्यक्ति की सहानुभूति उसके लिये महत्त्वपूर्ण बन गई थी।

यह उसके लिए दुखद स्थिति थी कि बस के भीतर बैठे सभी यात्री उसकी आहतता और विक्षुब्धता के प्रति सिर्फ तमाशबीनों की-सी जिज्ञासा से भरे हुए थे। उदासीनता में लिथड़े हुए-से चेहरों पर से आती हुई तमाशबीन नजरें उसे अपने चेहरे पर चिपचिपाती हुई-सी लग रहीं थीं और अब वह कहीं बहुत भीतर से यह अनुभव कर रही थी कि लोगों की इस तकलीफदेह उदासीनता का प्रतिकार सहानुभूति की आशाओं में सम्भव नहीं है। उसने अपने शरीर को भीतर-ही-भीतर झटका और किंचित तीखी आवाज में बगल की सीट पर के व्यक्ति से बोली—"भाई साहब, आप भी जरा संभल कर बैठिये..."

उस व्यक्ति ने अपनी आँखें ऐसे मिचमिचायीं, जैसे गर्द पड़ गई हो और उठ खड़ा हुआ—"बहन जी, आप-जैसी औरतों को सरकारी बसों में नहीं, प्राइवेट टैक्सी में बैठना चाहिए।"

कण्डक्टर पलट कर उनकी तरफ आ गया और उस व्यक्ति का कंधा थपथपाता हुआ, बोला—"महाशय जी, होम करते में हाथ जलता ही

है, इसका बुरा मानना ठीक नहीं।...हाँ जी, बहन जी, आपको कहाँ तक जाना है? बहन जी की बगल से ये भाई साहब उठ खड़े हुए हैं, आप बैठ जाएँ। मैं सीट के पीछे खड़िया से 'सिर्फ़ महिलाओं के लिए' लिख देता हूँ।"

उसे एक सम्मिलित ठहाका सुनाई दिया और वह जोर से चिल्लाई—"बदतमीज! हरामजादा!"

वह सोच रही थी, शायद, कण्डक्टर बर्दाश्त नहीं कर पाएगा। वह अब किसी भी तरह की स्थिति से निपटने को तैयार थी। कण्डक्टर ने अपनी बातों से एक ऐसा वातावरण बना दिया था, जिसमें उसका दम घुटने लगा था। लेकिन उसके लिये विस्मय और खीझ की बात यह थी कि अब भी कण्डक्टर का चेहरा गुस्से में तमतमाने की जगह, चुहलबाजी की उत्फुल्लता से चमकता हुआ-सा लग रहा था और उसकी घनी मूँछों में से शरारत लार की तरह चूती हुई लग रही थी।

कण्डक्टर के चेहरे पर प्रतिक्रिया के नाम पर सिर्फ एक चमक ही देखने से वह और ज्यादा खीझ अनुभव कर रही थी और क्या करना चाहिये, यह ठीक से तय न कर पाने की स्थिति में, वह चुपचाप अपनी जगह बैठी, टिकट उलट-पुलट कर देखने लगी थी कि उसे सुनाई पड़ा—"बहन जी, भूलूँगा नहीं। रेजगारी हाथ में आते ही आपके हाथों में पकड़ा दूँगा। पैंसठ पैसे मेरे हाथ के लिखे हुए हैं और मैं अपने तकदीर की लिखावट भले ही भूल जाऊँ, हाथ की नहीं भूला करता।...और जी, भाई साहब, आप लोग कहाँ पर से बैठे हैं....? अरे साहब, दुनिया का क्या है, यह तो हमेशा ही चक्करों वाली रही है। मर्दों को जरा आगा-पीछा देखकर ही चलना पड़ता है। मातायें तो यही मानकर चलती हैं कि ज्यादा-से-ज्यादा कोई क्या कर लेगा? हाँ जी, ये लीजिये

डिफेन्स कालानी पहुँचाने की गारंटी और भाई साहब, जरा चालीस पैसे टूटे दीजिए, बहनजी को पैंसठ पैसे लौटाने हैं।....जिन्दगी का क्या ठिकाना है, साहब, किसी का कर्जा आदमी अपने ऊपर बाकी न रखे.... नहीं तो ऊपर जाके हिसाब चुकाना पड़ता है और कौन जाने साहब, वहाँ हो सकता है, यहाँ से भी ज्यादा सूद देना पड़ता हो। क्यों, भाई साहब, अगर सूद की दर पच्चीस दर सैकड़े हुई, तो पैंसठ पैसों के कुल कितने लौटाने होंगे ?"

"अब बस हो गया कण्डक्टर! बहुत नौटंकी हो गई। अब जरा शांति से चलने दो। तुम लोग पैसेन्जरों से ऐसे बातें करते हो, जैसे सब नाचीज हों। महिलाओं से बातें करने की तमीज तो तुम लोगों में होती नहीं। डी० टी० यू० की बसें तो तुम लोगों के लिए चने के खेत हो गये हैं।"

कण्डक्टर ने मुड़कर देखा, वही सज्जन थे, जिनसे दरयागंज के स्टाप पर नोंक-झोंक हुई थी। वह कलगी वाले मुर्गे की तरह तनता हुआ-सा, उनके पास पहुँच गया—"मालूम पड़ता है, चने के खेतों में जाने की आदत आपकी बहुत रही है ?"

कण्डक्टर की बात पर कुछ लोग हँस पड़े, तो उनका सन्तुलन और बिगड़ गया—"बहुत शरम की बात है। लानत है ऐसे लोगों पर, जो किसी शरीफ घराने की औरत का मजाक उड़ाने वाले कण्डक्टर की चापलूसी करें। दिल्ली की पब्लिक ही नाकारा हो गई है, इसीलिए कण्डक्टरों-ड्राइवरों की हुकूमत चल रही है। कलकत्ते में..."

"अजी महाशय जी, क्या दिल्ली और क्या कलकत्ता—इस समय तो सारे हिंदुस्तान में इंदिरा जी की हुकूमत चल रही है। लेकिन लेक्चर झाड़ने का तजुर्बा आपका भी अच्छा-खासा लगता है। अगले इलेक्शन

में आपकी बारी भी आ सकती है। तब तक तो सब आपको करना ही पड़ेगा।...और रह गई हम कण्डक्टरों और ड्राइवरों की हुकूमत, तो वह ससुरी तो अपनी उन घरवालियों पर भी नहीं चलती, जो हाथ-भर लम्बा घूंघट निकाल कर चलती हैं।'

"देखो जी, तुम बहुत बदतमीजी बरत रहे हो। लाओ अपनी कम्प्लेण्टबुक निकालो।"...अपनी बुशशर्ट की जेब में से पेन निकालते हुए दरियागंज स्टॉप वाले सज्जन बोले, तो कण्डक्टर ने अपना माथा आगे बढ़ा दिया—"हमारे पास तो शिकायत के लिए ले-देके एक यही किताब है, चड्ढा साहब! हम तो इसमें शिकायतें दर्ज करते-करते थक गये, ऊपर वाले के यहाँ सुनवाई हुई नहीं। लिख दीजिए, लेकिन जरा सिफारिशी लिखियेगा। हो सकता है, आपकी ही सिफारिश लह जाये...? हाँ जी, जंगपुरे वाले घर जाने की तैयारी कर लें...जंगपुरा-इरोस टाकीज..."

चड्ढा साहब ने एक बार अपनी गोद में पड़े पोर्टफोलियो की तरफ देखा, जिसमें उनका 'विज़िटिंग-कार्ड' लगा हुआ था और एक बार घूरकर, कण्डक्टर को देखा—"तुम ये ड्रामे के डायलाग किसी और को सुनाना। सीधे-सीधे शिकायत की किताब दो। आप लोग देख रहे हैं साहब, कि इन लोगों के दिमाग किस तरह सातवें आसमान पर चढ़े हुए हैं?"

समर्थन में देखे गये चेहरों में से एक थोड़ा-सा उनकी ओर झुक आया—"अरे, भाई साहब, 'कम्प्लेण्ट' लिखकर भी क्या करेंगे? डी० टी० यू० में कोई सुनवाई नाम की चीज तो है नहीं। कैसे-कैसे घपलों की तो वहाँ कोई सुनवाई होती नहीं है...कांग्रेस के राज में तो, 'थ्री मंकी सिस्टम' चलता है।...गांधी जी भी क्या खूब थे, साहब, हिंदुस्तान वालों को पहले ही आगाह कर गये थे कि बेटा, बंदरों की औलाद हो, मालिकों के इशारों पर अगर अन्धे-बहरे-गूंगे बनकर

चलोगे, तो ही सुखी रहोगे।....उधर अमेरिका में देखिए, जरा-सा वाटरगेट काण्ड हो गया और वहाँ के लोगों ने प्रिसीडेण्ट निक्सन की हुलिया खराब कर दी है।....हमारे मुल्क में तो सारे गेट खुले हुए हैं, जिसकी मर्जी जिधर आए-जाए..."

बातों का रुख राजनैतिक भ्रष्टाचार की तरफ मुड़ने ही जा रहा था कि कण्डक्टर व्यंगपूर्वक बोला—"अरे, महाशय जी, वाटरगेट-फायरगेट से हम गरीब लोगों का क्या वास्ता ? हमने तो जबसे होश सँभाला है, सिर्फ़ कश्मीरी गेट, अजमेरी गेट, दिल्ली गेट, तुर्कमान गेट और इंडिया गेट देखे हैं। और डी० टी० यू० की बसों में जो डीज़ल इस्तेमाल होता है, इसमें वो असर है कि बस में घुसने वाले हरेक पैसेञ्जर को पार्लियामेंट का मेम्बर बनाकर छोड़ देता है।"....

"अरे, यार, तुम इतनी बहस क्यों कर रहे हो ? शिकायत की किताब तुम्हें देनी चाहिये। यह तुम्हारी ड्यूटी है।"—एक नवयुवक किस्म का व्यक्ति चड्ढा साहब के समर्थन में आगे बढ़ आया।

"वो तो, भाई साहब, मैं आपके 'आर्डिनेन्स' निकालने से पहले ही दे चुका होता।"—कण्डक्टर के चेहरे पर अब भी वही नितांत अविचलित व्यंग्यमयता पसरी हुई थी—"दरअसल डी० टी० यू० की बसों में शरीफ लोग ज्यादा सफर करने लगे हैं। शिकायत की पूरी कापी पहली ही ट्रिप में भर जाती है। वैसे जो शिकायत आपको करनी हो, बता दें, मैं जनरल मैनेजर साहब को मुँहजबानी बतला दूँगा।....याददाश्त मेरी बचपन से अच्छी रही है।"

"अरे, भाई, आप लोग क्यों छोटी-छोटी बातों पर आपस में लड़ते हैं। चंद मिनटों का साथ है। सबने अपने-अपने घर चले जाना है। और, साहब, शिकायत करने से क्या होता है ? कल आपको ही इतनी

फ़ुरसत नहीं रहेगी कि शिकायत पर कार्यवाही की जाए, तो आप उसमें दिलचस्पी लें। और फिर ,कहाँ-कहाँ किस-किस की शिकायत कीजिएगा ? दिल्ली अब सिर्फ़ ऐसे लोगों के लिए रह गई है, भाई साहब, जो अपनी-अपनी शिकायतों को खुद ही गधों की तरह ढो सकें।"

इन साहब की बातों का कुछ असर होने ही जा रहा था कि मर्माहत महिला बोल पड़ी—"आप मर्द लोगों के इस तरह के 'कोल्ड एटीट्यूड' का नतीजा यह हुआ है कि औरतों की अब कोई इज्जत नहीं रही। तीन कौड़ी के कण्डक्टर भी अब किसी भी शरीफ औरत की कमर में हाथ डाल सकते हैं और गन्दे ढंग से बातें कर सकते हैं...."

"अजी बहन जी, अब गुस्से को बहुत पान की गिलौरी की तरह मुँह में न भरे रहिये।...डी० टी० यू० की बसों के कण्डक्टर कमर में हाथ न लगायें, तो न-जाने रोज कितनों को चार भाइयों वाली चार-पाई पर जाना पड़े। बस में चढ़ते समय तो लोग यों लपकते हैं, जैसे महामारी फैली हुई हो या प्रलय मच रही हो, लेकिन बस के भीतर हरेक आदमी लीडर बन जाता है। अच्छा, साहब, आप ही बताइए, कण्डक्टर ससुरा क्या करे ? चमेली के तेल की शीशी हाथ में लिए रहे कि जलेबी का थाल ? शर्म जिस मैनेजमेंट को करनी चाहिए थी, वो तो थान पर बैठी गाभन भैंस की तरह पगुरा रही है—लोगों की हाय-तौबा सुनने को हम कण्डक्टर रह गये। घर से कोई खसम से लड़ के आवे, तो उसका गुस्सा कण्डक्टर पर, बीवी से डाँट खाके आवे, तो बला कण्डक्टर के मत्थे। लोग आवें और ऐसे दौड़ के चढ़ें, जैसे 'गोल्ड मैडल' उन्हीं को मिलने वाला हो...। और जमीन पर 'पायलागों' कहते हुए-से जा गिरें, तो कण्डक्टर बदनाम ! गिरते हुए को सँभालें, तो बदनाम ! न सँभालें, तो बदनाम ! नेकी तो ससुरे हातिमताई को भी रास नहीं आई...और जब से इंदिरा जी का राज हुआ है, दिल्ली

शहर को आबादी का हाल यह है कि चंद बरसों में नई-नई शादी करने के बाद बस के स्टाप पर खड़े होंगे, तो बस के मिलते तक में बच्चा गोद में लिये हुए बैठना पड़ेगा।"

अपना कहना-सुनना पूरा कर चुकने की-सी मुद्रा में कण्डक्टर बस के अगले हिस्से की तरफ बढ़ गया, तो लोगों की बातचीत केले के छिलकों के नीचे की चींटियों की तरह बाहर निकल आई।

"दरअसल हकीकत तो यह है, साहब, कि हमारी सरकार समाजवाद की तरफ जा रही है। बसों में भी वह यही बंदोबस्त रखना चाहती है कि जितनी सीटें हों, उतने लोग नहीं बल्कि समाज-का-समाज एक साथ चढ़े और उसमें गरीब-अमीर का ही नहीं, भाई-बहन, बुड्ढे-बच्चे, औरत-मर्द का भी कोई फर्क ही न रहे।"

"अरे साहब, कुछ तो बसों की 'शार्टेज' है और कुछ कण्डक्टर भी बहुत सिरचढ़े किस्म के होते हैं। जब अगलों को पता है कि हमारी लाख शिकायत कोई करे, कुछ बनना-बिगड़ना नहीं है, तो क्यों वो ठीक से ड्यूटी करने लगे ?"

"अभी भीड़ के वक्त में तो ये लोग अच्छी-खासी 'अर्निंग' कर लेते हैं। स्टेशन से आप बस में बैठ गये अगली सीटों पर, तो डिफेन्स कॉलोनी में टिकट लेने की नौबत आएगी। आप हड़बड़ी में पैसा देंगे, और उतर जाएँगे। और कहीं आपने टिकट माँगने के लिए आँखें उठाईं, तो कण्डक्टर तीस-पैंतीस पैसों के बदले में पाँच पैसे वाला चाइल्ड टिकट फाड़कर चूरा करता हुआ, आपकी तरफ उछाल देगा। और लड़कियों-औरतों के जिस्मों के साथ शरारतबाजी तो अब ऐसी चीज़ हो गई है कि इस तरफ से आँखें बन्द किये रहना ही ठीक है...

क्यों बहन जी, इसने क्या, आपकी कमर में हाथ डाला था ? बड़े शर्म की बात है, साहब !"—कहते हुए, एक प्रौढ़ किस्म के सज्जन उस महिला की तरफ घूम गये।

अब फिर अधिकांश लोगों का ध्यान उसकी तरफ केन्द्रित हो गया और वह अनुभव करने लगी कि जैसे सभी लोग उसकी कमर को गौर से देखना चाहते हैं। उसने हड़बड़ी में ही अपनी साड़ी को कमर की इर्द-गिर्द ठीक से लपेटने की कोशिश की और तय नहीं कर पाई कि क्या उत्तर दे।

प्रौढ़ किस्म के सज्जन सहानुभूति में उसकी तरफ को कुछ और ज्यादा झुकते जा रहे थे कि सामने से कण्डक्टर आ गया। उसे देखकर प्रौढ़ सज्जन अपने-आप में सिमट गये और खिड़की से बाहर झाँकने लगे। कण्डक्टर, शायद, अगले हिस्से वाले लोगों से बातें करता रहा था। लौटते हुए भी उसकी बातें साथ-साथ चली आ रही थीं। उसने खिड़की से बाहर झाँकने में झुके हुए प्रौढ़ सज्जन की पीठ थपथपाते हुए, काफ़ी शरारत-भरी आवाज़ में कहा—"महाशय जी, उतरने का रास्ता इधर से नहीं, आगे उस तरफ से है।"

प्रौढ़ सज्जन पलटे। एक क्षण खिसियाए हुए-से कण्डक्टर की तरफ देखते रहे और फिर रूखी आवाज़ में बोले—"मुझे यहाँ नहीं उतरना है। मेरी टिकट लाजपत नगर सेण्ट्रल मार्केट तक की है..."

"अच्छा, अच्छा ! तब तो आपको भी इन बहन जी के साथ-साथ ही उतरना है !"—कहते हुए, एक बार उस महिला की तरफ देखकर, वह नितांत आत्मीय होता हुआ-सा बोला—'बहन जी, कहा-सुना माफ़ करना। जहाँ चार भाँडे-बरतन इकट्ठे हुए, आपस में टकरा ही जाते हैं। दुनिया में नेकी-बदी ही न होती, तो ससुरी यह दुनिया ही क्यों

कहलाती ? अब कसूरवार सिर्फ इतना हूँ, बहन जी, कि बस में सफर करने वालों को जिन्दादिल रखना चाहता हूँ। दिन-भर के इधर-उधर के थके लौटे लोग लम्बा इन्तजार करके बस में घुसते हैं, तो बिटामिनों की कमी नजर आती है। चंद बातें नोंक-झोंक की हो जाती हैं, तो लोगों का सफर आसानी से कट जाता है। आपको मेरी बातों का कुछ बुरा लगा हो, तो मैं माफी माँगे लेता हूँ और जी, बहनों का हुकुम तो बादशा हुमायूँ से भी ना टाला गया, नेकीराम सगुर किस खेत की मूली हैं ? हाँ जी, बहन जी, ये लीजिए अपने पैंसठ पैसे। आप ज्यादा नाराज तो नहीं हो गईं ?"

अपनी बात पूरी करते ही, पलटकर, उसने खिड़की के पास के उन चारों व्यक्तियों को काफी गौर से देखा, जो उस महिला के पक्ष में उससे उलझ रहे थे, और अब भौंचक्के थे। यह सुनकर, कि महिला ने कह दिया था—"नहीं ऐसी कोई बात नहीं। मैं भी जरा तैश में आ गई थी। माफ करना।" वो लोग अभी अपने भौंचक्केपन में ही धँसे हुए थे कि कण्डक्टर मुस्कुराता हुआ आगे बढ़ गया—"हाँ जी, जंगपुरे-इरोस टाकीज वाले आगे निकल आने की मेहरबानी करें, जंक्शन नजदीक आ रहा है...हाँ जी, भाई साहब, आपका टिकट कट गया या नहीं ? मेहरबानी करके खुले पैसे दें, जनाब ! बहन जी के पैंसठ पैसे वापस करने हैं।"

"ये कण्डक्टर साहब तो ऐसे बोलते हैं दहाड़कर, जैसे दिल्ली आने से पहले जंगल में रहते थे !"—कण्डक्टर की बुलन्द आवाज पर किसी ने धीमे से व्यंग्य किया।

"रहते थे ? श्रीमान् जी, हम तो अब भी अपने को जंगलवासी ही मानते हैं। फर्क सिर्फ इतना है, पहले झाड़-दरख्तों के जंगल में रहते

थे, अब आदमियों के जंगल में ! गुस्ताखी माफ कर सकें आप, भाई साहब, तो इतना कह लेने की इजाजत बंदे को जरूर दे दें, कि जिस तरीके से दिल्ली की जनता बसों में चढ़ती है, इतनी हड़बोंग में तो कभी जंगल के बन्दरों को दरख्तों पर चढ़ते-उतरते देखा नहीं ! हम तो साहब, जंगल में मंगल के मुरीद हैं। फकत इसी खब्त में अपना गला खराब करते हैं और आप लोगों का वक्त ! गुस्ताखी माफ करें..."

जब वह 'गुस्ताखी माफ करें' कहता था, उसका पूरा चेहरा शरारत से भर जाता था और चेचक के चकत्ते बाहर को उभरते हुए दिखाई देने लगते थे।

बस के रुकने के शोर में फिर कुछ सुनाई नहीं पड़ा कि उन लोगों ने आपस में कोई बातचीत की या नहीं, लेकिन महिला के चेहरे पर अब पहले की तरह खिन्नता और गुस्से का तनाव रह नहीं गया था। वह अब पहले की अपेक्षा काफी संतुलित दिख रही थी और अपने पर्स में रखी हुई किसी चीज को देखने में व्यस्त हो गई थी।